अतीत का पुनरावलोकन

ब्रह्मप्रकाश त्यागी



सहज प्रकाशन, मुजफ्फरनगर

पुस्तक में व्यक्त किये गये विचार स्वयं रचनाकार के अपने हैं। इनसे प्रकाशक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इस सम्बन्ध में किसी भी विवाद की जिम्मेदारी लेखक की होगी।

ISBN : 978-81-925510-7-4

प्रकाशक : **सहज प्रकाशन**
113—लाल बाग, गांधी कालोनी
मुजफ्फरनगर – 251001 (उ०प्र०)

संस्करण : प्रथम, सन् 2015 ई०
आवरण : परमेन्द्र सिंह
लेजर टाइपसैटिंग : पब्लिश प्वाइंट, मुजफ्फरनगर
मुद्रक : मोहन आफसेट प्रिंटर्स, मेरठ

मूल्य : ₹ 140

ATEET KA PUNARAVLOKAN - *Criticism by Brahmaprakash Tyagi*

अनुक्रम

प्रस्तावना

पुस्तक में रामायण और महाभारत का अच्छा-खासा संक्षिप्त एवं साझा शोध पत्र है। लेखक जिन प्रसंगों को उठाता है, योद्धा की तरह तर्क की तलवार से अपने दृष्टिकोण से निःसंकोच सिर काटता चला जाता है। लेखक, पाठक, समीक्षक कितने ही तटस्थ दिखाई दे या होने की कोशिश करें, कुछ परिस्थितिजन्य, समाजजन्य, लिंगजन्य, सोचजन्य, व्यवस्थाजन्य बहुत कम या ज्यादा पूर्वाग्रह भी होते हैं। आस्था तर्क बरदाश्त नहीं करती, जबकि लेखक पुस्तक में अनेक जगह आस्था पर भी तर्क की तलवार लेकर खड़ा है। पाठक दुर्योधन को सही करने का मतलब कृष्ण को गलत ठहराना भी समझ सकता है। पाठकों में नई बहस एवं विवाद की सम्भावना के बावजूद मूल्यों की स्थापना भी पुस्तक में निहित है। लेखक मूल्यों की स्थापना करते वक्त आराध्य कृष्ण को भी नहीं छोड़ता। सीता परित्याग एवं शंबूक वध को जब लेखक सिरे से खारिज करता है तो इसके लिए नए शोध की जमीन तैयार हो जाती है। कुछ तर्कों से पाठक पूरी तरह असहमत रहे, इसकी भी सम्भावना है। कई प्रसंग जैसे कुबेर पुत्र नल कुबेर की पत्नी का रावण पर शाप नई जानकारी से अगवत कराते हैं।

पुस्तक ज्ञानवर्द्धक, पठनीय, रोचक, संग्रहणीय है, नए दृष्टिकोण एवं तार्किकता से परिचय कराती है। कड़ी मेहनत के बाद लिखी गई है। आशा है पाठकों को पसन्द आएगी।

– डा. पुष्पलता

अकाट्य तर्क

लेखक ने सामान्य जनमानस के लिए सामान्य भाषा में पुस्तक को लिखा क्योंकि उसे भारत के आम आदमी के पास, अपनी बात को पहुँचाना था। पुस्तक में कतिपय भ्रांतियों, दुविधाओं का बड़ा ही मर्मस्पर्शी और तार्किक विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने अपनी पुरजोर शक्ति से अपने कथन को बहुत ही पैनी दृष्टि से अनेकों तर्क देकर सत्य सिद्ध किया है जो अतुलनीय, सराहनीय और माननीय है। श्रीराम के दो महती उद्देश्यों-मर्यादा और आदर्श उपस्थित करने को सचमुच निर्विवादित रूप से साकार किया है। मुझे पूरा विश्वास है कि लेखक इसमें पूर्णरूपेण सफल हुआ है और मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि वह आगे भी भारतीय मनीषा में फैले अनेकों अनुत्तरित प्रश्नों का निराकरण उपस्थित करेंगे।

मूर्ति पूजा प्रलेख में लेखक ने अपने व्यक्तिगत विचार प्रकट किये हैं। हो सकता है भिन्न आस्थाओं और धर्मावलम्बियों में वह स्वीकार्य नहीं हों परन्तु रचनाकार ने जो तर्क प्रस्तुत किये हैं उनमें अधिकांश अकाट्य हैं। भाषा-शैली सहज है जो समाज के अन्तिम व्यक्ति तक सम्प्रेषित होगी।

– रामशरण शर्मा 'पंकज'

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम
मेरी नजर में

भारत के जनमानस को जिन महापुरुषों ने सबसे अधिक प्रभावित किया है उनमें श्रीराम और श्रीकृष्ण का नाम सर्वोपरि है। यहाँ तक कि दोनों को ईश्वर का अवतार माना गया। घर-घर व मन्दिरों में उनकी मूर्ति स्थापित कर पूजा की जाने लगी।

भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि इन दोनों महापुरुषों की पूजा तो खूब की जाती रही किन्तु उनके दिखाये रास्ते पर चलने की परम्परा विकसित नहीं हो पायी। यही कारण है कि भारत हजारों वर्षों तक मुट्ठी भर लोगों का गुलाम रहा। यहाँ के राजा विदेशी हमलावरों का सफलतापूर्वक सामना कभी नहीं कर सके। न ही प्रजा में कभी ऐसा आन्दोलन प्रारम्भ हो सका कि कभी वह विदेशी हमलावरों के विरुद्ध युद्ध में भागीदार हो सके।

यहाँ हम पहले श्रीराम के जीवन का अध्ययन करेंगे क्योंकि वे श्रीकृष्ण से पूर्वकालीन माने जाते हैं। श्रीराम को हम यहाँ एक ऐसे महापुरुष की दृष्टि से देखेंगे जिन्होंने अपने पूरे जीवन में सामान्य मनुष्यों के लिए ऐसे आदर्श स्थापित किये कि उन पर चलकर एक आदर्श मनुष्य बना जा सकता है। यदि हम उन्हें ईश्वर का अवतार या अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न कोई दिव्य पुरुष मानकर उनके जीवन का वर्णन करें तो यह भावना पनपती है कि श्रीराम तो ईश्वर का अवतार थे। अतः हम उनके आदर्शों पर कैसे चल सकते हैं? उनके द्वारा स्थापित मर्यादाओं का पालन सामान्य मनुष्य कैसे कर सकता है?

मेरा उद्देश्य यही स्थापित करना है कि श्रीराम के आदर्शों पर सामान्य मनुष्य भी चल सकता है।

1.1 बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था

श्रीराम का जन्म अयोध्या में हुआ था। वे महाराजा दशरथ के चार पुत्रों में सबसे बड़े थे। उनका बचपन राजमहल में राजसी परिवेश में माता-पिता के लाड़-प्यार में व्यतीत हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा गुरु वसिष्ठ की देख-रेख में हुई। वह अपने भाइयों को बहुत प्यार करते थे। माता-पिता व गुरुजनों का बहुत सम्मान करते थे। कहा गया है कि

प्रातः काल उठि कै रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहि माथा।।

श्रीराम विभिन्न प्रकार के व्यायाम, शस्त्र चालन व उस काल में उपलब्ध सभी प्रकार की विद्याओं का अध्ययन बहुत ही परिश्रमपूर्वक करते थे। उनकी बाल्यावस्था व किशोरावस्था से हमें निम्न शिक्षाएँ मिलती हैं

(क) समवयस्कों से प्रेम करो व बड़ों का आदर करो। युवावस्था में इतने शक्तिशाली बनो कि जीवन में अन्याय के विरुद्ध लड़ सको। मानसिक रूप से भी पूर्ण सबल बनो क्योंकि कमजोर व्यक्ति कभी भी न तो अपनी रक्षा कर सकता है और न ही अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर सकता है। अतः शारीरिक बल, शस्त्र बल व मानसिक बल में श्रेष्ठतर बनने का प्रयत्न उम्र भर करते रहना चाहिए।

(ख) एक राजकुमार की हैसियत से कभी भी उन्होंने जाति-पाँति या वर्ण के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ कोई भेदभाव नहीं किया। ना ही उन्होंने किसी प्रकार की छुआछूत का आचरण किसी भी व्यक्ति के साथ किया। जीवन में किसी स्त्री पर कुदृष्टि नहीं डाली। इस प्रकार उन्होंने अपने आचरण को 'मनसा', 'वाचा', 'कर्मणा' सदैव पवित्र रखा। मध्ययुगीन भारत में जो छुआछूत, जाति-पाँति, ऊँच-नीच की प्रथाएँ चल पड़ी थी उन्हें हम श्रीराम के जीवन में लेशमात्र भी नहीं पाते हैं।

अतः दूसरा आदर्श या मर्यादा यह रही कि मनसा वाचा कर्मणा पवित्र आचरण करो व सब मनुष्यों को समान समझो।

(ग) ताड़का वध : दैत्यों से अपने आश्रम की रक्षा के लिए विश्वामित्र श्रीराम, लक्ष्मण को ले जाते हैं। यह कार्य बहुत ही जानलेवा व खतरों से भरा था। उन्हें बड़े-बड़े आतंकवादियों, हत्यारों व लुटेरों का मुकाबला करना था। ऐसे में राजा दशरथ भी बहुत चिंतित रहे होंगे। यदि श्रीराम और लक्ष्मण जरा भी भयभीत होकर जाने की अनिच्छा प्रकट करते तो उन्हें कभी भी ऐसे अभियान पर भेजा ही नहीं जाता। पूरे अभियान में श्रीराम के किसी व्यक्तिगत लाभ की बात तो कहीं थी ही नहीं किन्तु जीवन का खतरा अवश्य था। यहाँ श्रीराम ने ताड़का व सुबाहु का वध किया। मारीच को दक्षिण की ओर भाग जाने को बाध्य किया। पूरे क्षेत्र में शान्ति स्थापित की।

अतः यहाँ उन्होंने यह आदर्श प्रस्तुत किया कि शारीरिक बल, शस्त्र बल व विद्या बल प्राप्त करो व अन्याय के विरुद्ध संघर्ष अपने जीवन का लक्ष्य रखो।

(घ) धनुष यज्ञ : आगे हम मिथिला में धनुष यज्ञ का दृश्य देखते हैं। सभी राजाओं के सामने अपना बल-पौरुष सिद्ध करने के बाद भी श्रीराम के व्यवहार में न अभिमान है, न बड़बोलापन न ही किसी का अपमान करने का कोई व्यवहार। यहाँ तक कि परशुराम के उत्तेजित करने पर भी वे संयम नहीं खोते हैं। अपने बल पौरुष व शक्ति का प्रदर्शन तभी करते हैं जब अन्य सब उपाय असफल हो जाते हैं। हम देखते हैं कि अभिमानी व्यक्ति शक्ति के सामने ही झुकता है। क्षमा तथा शालीनता केवल वीरों का ही आभूषण होती है कायरों व कमजोरों का नहीं।

राष्ट्रकवि दिनकर ने भी कहा है :-

क्षमा सोहती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दन्तहीन, विषहीन विनीत सरल हो।।

(च) राज्याभिषेक : आगे हम राज्याभिषेक का दृश्य देखते हैं। श्रीराम के समय तक, ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकारी बनाने की परम्परा थी। इस कारण श्रीराम स्वाभाविक उत्तराधिकारी थे। उन्हें राज-सिंहासन देने की घोषणा की गई। यहाँ पर श्रीराम ने अनेक आदर्श व

मर्यादाओं की स्थापना की है। इन मर्यादाओं ने भारतीय जनमानस को गहराई तक प्रभावित किया है। यहाँ तक कि लोग उनमें ईश्वरत्व होने की कल्पना करने को बाध्य हुए। इसीलिए श्रीराम आज भी जनमानस के प्रेरणास्रोत बने हुए हैं।

पहला आदर्श : सिंहासन पर ज्येष्ठ पुत्र का बैठना एक अच्छी परम्परा तो है किन्तु अनिवार्य शर्त नहीं। यदि उचित कारण मौजूद हों तो छोटे भाइयों के पक्ष में राजगद्दी का परित्याग भी कर देना चाहिए।

दूसरा आदर्श : परिवार की सुख-शांति के लिए त्याग एवं माता-पिता की आज्ञा के पालन का भी आदर्श श्रीराम ने रखा।

तीसरा आदर्श : छोटे भाई और वह भी सौतेले के प्रति सच्चे हार्दिक प्रेम को प्रमाणित किया। राम-लखन की जोड़ी आज भी भाइयों के लिए आदर्श मानी जाती है।

चौथा आदर्श : श्रीराम ने सहर्ष वन-गमन करके दूसरों की भलाई के लिए भगवान शंकर के विषपान की तरह सर्वोत्तम त्याग का आदर्श प्रस्तुत किया।

1.2 अहल्या उद्धार

वन गमन के दौरान श्री राम महर्षि गौतम के आश्रम पर जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी मनमुटाव के कारण चाहे वह सतीत्व हरण जैसे किसी कारण से ही क्यों न हों; महर्षि गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या का परित्याग कर दिया था। उस घोर दुःख और अपमान के कारण गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या शिलावत् हो गई। 'अवसाद' में बहुत से लोगों या स्त्रियों के साथ प्रायः आज भी ऐसा हो जाता है। इस 'शिलावत' शब्द का ही बाद में शिला के रूप में प्रयोग होने लगा व कहानी प्रचलित हो गई कि अहल्या पत्थर की हो गई थीं।

यहाँ पर श्रीराम ने स्पष्ट मर्यादा स्थापित की कि यदि छल, कपट के कारण किसी स्त्री का शील हरण हो जाता है तो उस स्त्री को दोषी नहीं माना जा सकता तथा उसे कोई दंड नहीं देना चाहिए।

यह एक क्रांतिकारी व समाज को प्रभावित करने वाला निर्णय था। काश! हिन्दू समाज ने श्रीराम के इस निर्णय के महत्त्व को समझकर उस पर आचरण किया होता तो बाद के हजारों वर्षों में ऐसी महिलाओं को अपना धर्म त्यागने या मृत्यु को वरण करने को बाध्य न होना पड़ता। जैसा कि भारत के इतिहास में होता रहा है। यहाँ जो स्त्रियाँ युद्ध के समय गलत हाथों में पड़कर सतीत्व गँवा बैठी, उन्हें हमारे हिन्दू समाज ने स्वीकार ही नहीं किया। राम भक्ति का झंडा उठाने वालों ने काश राम के पदचिह्नों पर चलना सीखा होता।

1.3 एक पत्नीव्रत

श्री राम ने नारी सशक्तिकरण के पक्ष में एक नई मर्यादा स्थापित की कि यदि पतिव्रता होना नारी का धर्म है तो 'पत्नीव्रती' होना पति का धर्म है। पति को एक ही पत्नी से विवाह करके उम्र भर निभाना चाहिए। अपने पिता राजा दशरथ के तीन रानियाँ होने के परिणाम भी उनके सामने थे ही। इस आदर्श के औचित्य को समझने के लिए ईश्वर के विधान को देखिये कि उसने संसार में स्त्रियों व पुरुषों की संख्या लगभग बराबर बनाई है। आजकल जो स्त्रियों की संख्या कम हो रही है उसका कारण कन्या भ्रूण हत्या है।

शारीरिक दृष्टि से भी एक पुरुष एक ही नारी को सन्तुष्ट रख सकता है। भावनात्मक दृष्टि से उनमें एक दूसरे के प्रति गहरा प्यार तभी रह सकता है जब दोनों एकनिष्ठ व्रत का पालन करें।

मध्य युग में जब राजा, नवाब, बादशाह और बड़े जमींदार आदि अनेक स्त्रियों को अपने महलों में रख लेते थे तो उसके दो अनिवार्य परिणाम होते थे। एक तो पर्याप्त मात्र में पति का सुख न पाकर वे स्त्रियाँ उम्र भर नारकीय यन्त्रणा का जीवन जीने को बाध्य होती थी। ऐसी स्त्रियाँ मजबूरी में एक ही पुरुष से बँधी होती थी। मौका मिलते ही वे पर पुरुषों की कामना करने लगती थी। अशोक व कुणाल जैसे कथानक इतिहास में बड़ी संख्या में मौजूद हैं।

दूसरा परिणाम यह होता था कि अनेक पुरुषों के हिस्से में एक भी स्त्री नहीं आ पाती थी और वे उम्र भर एकाकी जीवन जीकर अन्त में अपने वंश को अपने साथ ही समाप्त करने को मजबूर होते थे। इससे समाज में

व्यभिचार भी फैलता था। मध्य युग में जब युद्ध में बड़ी संख्या में जवान पुरुष मरते थे तब तो एक से अधिक स्त्रियों से विवाह का औचित्य था किन्तु आजकल तो स्थिति भयावह हो जाएगी।

इसके अलावा एड्स जैसी बीमारियों का बचाव भी एक पत्नीव्रत में निहित है। जहाँ पर एक पति की एक से अधिक पत्नियाँ होती है उन घरों में सदैव कलह ही मची रहती है क्योंकि प्रत्येक स्त्री की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसके पति पर किसी अन्य स्त्री का अधिकार न हो।

1.4 वनवास

वनवास की अवधि में श्रीराम रास्ते में आने वाले आश्रमों में ऋषि मुनियों के दर्शन करते हैं और अस्त्र, शस्त्र चलाने की कला सीखते हुए चलते हैं। सभी ऋषियों के आशीर्वाद लेते हैं। इस प्रकार वे वनवास की अवधि को देशाटन व बोधाटन का रूप देते हैं। स्वतन्त्रता के आन्दोलन के समय भी महात्मा गाँधी व जवाहरलाल नेहरु ने जेल में रहने के समय को उत्तम साहित्य लिखने में उपयोग किया।

इस अवधि में वे कभी भी माता कैकई या भाई भरत के लिए कोई आक्रोश प्रकट नहीं करते बल्कि उन्हें पूर्ण सम्मान ही देते हैं। वनवास की अवधि में वे केवट, निषादराज तथा शबरी से बराबरी के भाव से सम्मानपूर्वक मिलते हैं। यद्यपि आज के दृष्टिकोण से ये कुछ छोटी जाति के लोग थे, किन्तु श्रीराम के आचरण में छुआछूत व ऊँच-नीच जैसी कोई भी बात हम कहीं नहीं पाते हैं। निषाद जाति के लोग भी राजा होते थे। यह इस बात का भी प्रमाण है कि हिन्दू समाज में जो बुराइयाँ ऊँच-नीच आदि बाद में आ गई थीं, वह श्रीराम के समय में नहीं थी। यहाँ श्रीराम ने समय के सदुपयोग और समाज में सबको बराबर समझने का आदर्श हमारे सामने रखा।

1.5 वीर भाव

एक बार श्रीराम ने वन में मनुष्यों की अस्थियों का ढेर पड़ा देखा तो पूछने पर मुनि ने बताया कि ये अस्थियाँ उन कमजोर असहाय मनुष्यों की

हैं जिन्हें राक्षसों ने मार डाला क्योंकि वे अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे। तब श्रीराम प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं इस पृथ्वी को ऐसे अत्याचारियों से विहीन कर दूँगा। (अरण्यकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

निशिचर हीन करो मही।
भुज उठाय पण कीन्ह।।

(तुलसी)

इतने दुर्दान्त शक्तिशाली राक्षसों से युद्ध मोल लेना अपने प्राणों को संकट में डालने जैसा था। इस कार्य में श्रीराम का कोई व्यक्तिगत लाभ या स्वार्थ भी नहीं था। फिर भी कमजोरों की रक्षा में श्रीराम खड़े हो गये। गुरु गोविन्द सिंह ने भी वीर की परिभाषा बताते हुए यही कहा है –

सूरा सोई जाणिये, जो लड़ै दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरे, तऊ न छांडे खेत।।

इस प्रकार श्रीराम एक आदर्श वीर होने का आदर्श हमारे सामने रखते हैं व उस पर आचरण करके भी दिखाते हैं। वीर बनने की प्रेरणा भी देते हैं। गीता में योगीराज श्रीकृष्ण ने भी 'विनाशाय च दुश्कृताम्' कहकर यही प्रेरणा दी।

1.6 भरत मिलाप

अब हम भरत मिलाप के प्रसंग पर आते हैं। भरत की प्रार्थना को नम्रतापूर्वक अस्वीकार करके श्रीराम ने यह मर्यादा स्थापित की कि दूसरों की उदारता का लाभ उठाकर कभी अपने सिद्धान्तों का परित्याग नहीं करना चाहिए। सिद्धान्तों पर अडिग रहते हुए श्रीराम ने राजगद्दी व राजमहलों के सुख-आराम को ठुकरा दिया। संसार में जितने भी महापुरुष हुए, उन्होंने जिन सिद्धान्तों को उचित समझा उन पर स्वयं आचरण करके दिखाया। उन सिद्धान्तों पर चलने के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को वे तत्पर रहे। उन्होंने अपने जीवन में बलिदान का उदाहरण स्वयं प्रस्तुत करके दिखाया। ऐसे ही कुछ अन्य उदाहरण देखिये – जैसे सुकरात, ईसा मसीह, हसन-हुसैन, महाराणा प्रताप, गुरु अर्जुन देव, गुरु गोविन्द सिंह, गुरु हरगोविन्द सिंह, बंदा बैरागी, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस आदि। इन महापुरुषों के नाम इसलिए उल्लिखित किये गये हैं कि

भगवान राम ने जो आदर्श हमारे सामने रखे, उन पर अन्यों का चलना भी सम्भव है। अलौकिक शक्ति प्राप्त होने की आवश्यकता नहीं है, मात्र उच्च कोटि की जीवन शक्ति, साहस, सत्य, करुणा, त्याग की भावना व शक्ति के सभी रूप जैसे शारीरिक बल, बुद्धि बल, धन बल, शस्त्र बल आदि का विकास करना चाहिए।

यह हमारा सौभाग्य है कि भारतभूमि में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने जन्म लिया।

1.7 शूर्पणखा प्रसंग

उसके बाद शूर्पणखा प्रसंग आता है। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रसंग को हम उसी रूप में पढ़ते-सुनते आ रहे हैं जैसा वाल्मीकि जी ने रामायण में व तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है। तुलसीदास ने तो सारी कथा ही 'रामायण' और अन्य उपलब्ध राम साहित्य से ली है। दोनों महाकवियों ने राम व लक्ष्मण को आक्षेप से बचाने के लिए इस तर्क का सहारा लिया कि स्वरूप नखा सीता की हत्या करने पर उतर आयी थी। अतः राम को उसके नाक-कान काटने के लिए लक्ष्मण से कहना पड़ा। कवि को काव्य लिखने के लिए कुछ कल्पना व भावुकता का सहारा भी लेना पड़ता है। यह प्रत्येक व्यक्ति की सोचने की क्षमता पर निर्भर करता है व क्षमता पर उस समय की सामाजिक स्थिति, उपलब्ध ज्ञान व लोक कथाओं-परम्पराओं का प्रभाव अवश्य पड़ता है। वाल्मीकि व तुलसी दोनों महाकवि थे। उन्होंने अपने को सर्वज्ञ कभी नहीं कहा, न ही त्रिकालदर्शी माना। ऐसा प्रतीत होता है कि नख से शिखा तक सुन्दर राजकुमारी से विवाह के लिए तो उस जमाने में अनेक वीर राजा, राजकुमार लालायित रहे होंगे। ऐसी राजकुमारी के द्वारा स्वयं को प्रस्तुत कर प्रणय निवेदन को अस्वीकार करने से जो अपमान एक राजकुमारी का हुआ, वह नाक कटना ही समझना चाहिए। नाक कटना का अर्थ अपमान ही होता है। एक राजकुमारी के साथ ऐसा अमानवीय व्यवहार श्रीराम व लक्ष्मण के द्वारा सम्भव नहीं है। वे तो शिष्टाचार के प्रतिरूप थे। कालान्तर में नाक कटने के मुहावरे को वास्तविक नाक कटना समझ लिया गया। वैसे भी महर्षि

वाल्मीकि के हस्तलेख में तो कोई 'रामायण' उपलब्ध नहीं। तुलसीदास की हस्तलिखित प्रति भी शायद कहीं उपलब्ध नहीं है। क्योंकि कागज की इतनी उम्र ही नहीं होती कि वह बहुत दिन तक सुरक्षित रह सके। अतः कितने अंश प्रक्षिप्त हो सकते हैं कहना कठिन है।

यहाँ पर श्रीराम ने फिर यह मर्यादा रखी कि व्यक्ति को 'एक पत्नी व्रती' सामान्य अवस्था में ही नहीं, तब भी रहना चाहिए जब उसको सुन्दर स्त्रियों के सुख प्राप्त करने के अवसर भी प्राप्त हों या इससे आगे स्त्री सुख भोगने का दबाव भी हो। लक्ष्मण के चरित्र का भी श्रेष्ठतम उदाहरण है कि वे स्त्री सुख से वंचित होने पर भी 'एक पत्नी व्रती' होने की मर्यादा बनाये रखते हैं।

यह आदर्श उन राजाओं से बिल्कुल विपरीत है जिन्होंने सदैव बड़ी संख्या में अपने महलों में स्त्रियों को बन्दिनी का जीवन जीने को मजबूर किया। उम्र भर पर्याप्त पुरुष सुख से वंचित रखकर उनके जीवन को नारकीय बनाये रखा।

यह आदर्श उन लोगों से भी अलग है जो लोग स्त्रियों की आर्थिक मजबूरी का फायदा उठाकर उनका दैहिक शोषण करते हैं।

ऐसा करते समय श्रीराम जानते थे कि एक अपमानित राजकुमारी, वह भी रावण जैसे शक्तिशाली राजा की बहन के क्रोध के क्या-क्या भयंकर परिणाम हो सकते हैं और हुए भी। खर व दूषण ने श्रीराम व लक्ष्मण पर आक्रमण किया। उनके मारे जाने पर शूर्पणखा रावण से शिकायत करती है जिसके कारण सीता हरण व लंका युद्ध की घटनाएँ घटित होती हैं। यहाँ पर श्रीराम अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर हो जाते हैं।

1.8 सीताहरण

उसके बाद शूर्पणखा के उकसाने पर सीता का अपहरण करके रावण उन्हें लंका ले जाता है। यहाँ पर श्रीराम का विलाप अपनी पत्नी के लिए उत्कृष्ट प्रेम का उदाहरण है। विवाह के समय पति अपनी पत्नी की रक्षा करने का वचन देता है। श्रीराम इस वचन का पालन करने व अपने कुल की इस मर्यादा की रक्षा

करने के लिए तत्पर हो जाते हैं –

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्राण जाहि पर वचन न जाई।।

वह सीता की खोज का बीड़ा उठाते हैं। असंख्य बाधाओं व संकटों का सामना करते हुए वे न्याय के रास्ते पर अपूर्व धैर्य के साथ चलते हुए लंका तक जा पहुँचते हैं। भृर्तहरि ने शायद ऐसे ही आदर्श की कल्पना निम्न श्लोक में की है –

निन्दन्तु नीति निपुणा, यदि वा स्तवन्तु।
लक्ष्मी समाविशति, गच्छन्तु व यथेष्ठम्।।
अद्यैव मरणमन्तु, युगान्तरे वा।
न्याय्यात् पथ प्रविचलन्ति पद्म न धीरा।।

यहाँ हम यह भी देखते हैं कि सीता की खोज में जुटते समय श्रीराम को यह पता नहीं था कि सीता कहाँ है व कैसी अवस्था में है? वह अपने शील की रक्षा कर भी पाई या नहीं, वह जीवित भी है या नहीं? प्रत्येक अवस्था में अपहर्त्ता को दंड देना व सीता को वापस लाना ही श्रीराम का लक्ष्य था।

यहाँ हम एक दन्त कथा पर भी विचार करते चले कि सीता हरण से पहले वास्तविक सीताजी को अग्नि में प्रवेश करा दिया गया। जिस सीता का हरण हुआ था वह तो नकली सीता थी। इस बात को सीता के प्रति सम्मान प्रकट करने की व कथानक में आलौकिकता उत्पन्न करने की कवि कल्पना मानकर हम अस्वीकार करते हैं। क्योंकि एक तो ऐसा करना सामान्य मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। यह श्रीराम को भगवान सिद्ध करने का मनोभाव भी है। यदि हम श्रीराम को भगवान मान लें तो फिर उनके द्वारा स्थापित मर्यादाओं व आदेशों को मनुष्य के लिए अनुकरणनीय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि लोग कह सकते हैं कि वे तो सर्वशक्ति सम्पन्न भगवान थे, हम वैसी शक्तियों के अभाव में इनके पदचिह्नों पर कैसे चल सकते हैं?

वैसे भी यदि सीता जी नकली थी तो श्रीराम के पूरे खोज अभियान पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। फिर तो श्रीराम एक युद्ध पिपासु राजा व असंख्य सैनिकों की हत्या के लिए उत्तरदायी सिद्ध होंगे। आज की परिभाषा में युद्ध अपराधी ठहराये जाएँगे। यह बात श्रीराम के जीवन दर्शन से मेल नहीं

खाती। अतः यह कथा सत्य नहीं हो सकती है। रामचरितमानस में अरण्यकाण्ड के दोहा संख्या 23 के बाद यह कथन आया है।

1.9 जटायु, हनुमान, जामवंत, सुग्रीव

प्राचीन भारतीय साहित्य तथा विश्व साहित्य में भी मनुष्य के अतिरिक्त जीवों जैसे तोता, मैना, गाय, बैल, बन्दर, कछुआ, साँप आदि जीवों को पात्र बनाकर कथा साहित्य लिखा गया है। सभी कहानियों में कोई सन्देश होता है किन्तु पात्रों को सर्वकालीन बनाने के लिए व किसी व्यक्तिगत आक्षेप से बचने के लिए पात्रों को जीव जन्तुओं में से बना दिया गया है जबकि इन कथाओं में चित्रण मानवीय भावनाओं का ही होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जटायु दक्षिण भारतीय किसी जनजाति का वीर योद्धा था जिसने विलाप करती सीता को रावण से छुड़ाने का प्रयत्न किया था। किसी भी वीर पुरुष के लिए यह स्वाभाविक ही होता है कि वह मुसीबत में फँसी स्त्री की रक्षा करने का प्रयत्न करे। जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं कि

शूरा सोई जाणिये। जो लड़ै दीन के हेत।।

भारतीय दर्शन के अनुसार सभी जीवों में आत्मा होती है। उन्हें भी सुख दुःख का अनुभव मानव की तरह ही होता है। वैसे भी प्रकृति सभी जीवों का सृजन इस प्रकार करती है कि सभी का अस्तित्व एक-दूसरे के अस्तित्व पर निर्भर है। अतः जीवों के प्रति दया भाव उत्पन्न करने व उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के कारण उनमें भी देवत्व की कल्पना कर ली गई। इसी कारण आज का हिन्दू समाज परम्परा से ही जीवों के प्रति दया व श्रद्धा भाव रखता है।

आज भारत में पंजाब, बंगाल, कश्मीर, भूटान, महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु आदि प्रदेशों के रहने वाले मनुष्यों के रंग रूप, शारीरिक गठन भाषा, पहनावा, रीतिरिवाज, खानपान आदि में एक दूसरे से काफी भिन्नता पाई जाती है। श्रीराम के समय में यह भिन्नता और भी ज्यादा रही होगी। क्योंकि उन दिनों आजकल जैसे आवागमन के साधन नहीं थे, ना ही कोई विकसित सम्पर्क भाषा थी। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यक्ष, किन्नर, दैत्य, राक्षस, वानर, भालू, नाग आदि विभिन्न जातियों के नाम रहे होंगे। नाग उपनाम

लगाने वाले आज भी उत्तर भारत में मौजूद हैं। जैसे वीरेन नाग' आदि और आज भी श्रीलंका में 'भंडारनायके' उपनाम के लोग मौजूद हैं। जैसे लंका की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती सिरिमाओ भंडारनायके आदि। अब आप देखें कि 'बन्दरनायक' व भंडारनायके' में कितना शब्द साम्य है।

अतः हनुमान, सुग्रीव, अंगद, जामवंत आदि बन्दर भालू न होकर इन्हीं दक्षिण भारतीय जातियों जनजातियों के वीर रहे होंगे। तुलसी व उनके पूर्ववर्ती वाल्मीकि आदि भावुकतावश व काव्य में रहस्य रोमांच, अलौकिकता भरने के लिए उन्हें बन्दर-भालू लिख गये।

ध्यान देने की बात तो यह है कि यदि कवि ऐसा न करते तो यह महाकाव्य न बनकर नीरस इतिहास मात्र होता जिसे अन्य असंख्य राजाओं की कहानियों की तरह हम भूल चुके होते।

1.10 बाली वध

सीता की खोज में श्रीराम दक्षिण की ओर जाते हैं। वहाँ उनकी भेंट सुग्रीव से होती है। हनुमान से भेंट भी सुग्रीव के मंत्री के रूप में व एक विद्वान् के रूप में होती है।

यहाँ श्रीराम एक उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ व चतुर सेनानायक का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। काश भारतीय राजाओं ने श्रीराम के आदर्श से कुछ सीखा होता व उस पर आचरण किया होता तो भारत का भाग्य कुछ और ही होता। श्रीराम ने राजनीति व युद्ध नीति के निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आचरण किया

1. पड़ोस में यदि कोई शक्तिशाली राज्य पनप रहा है तो वह कभी भी अपने राज्य के लिए संकट उपस्थित कर सकता है। अतः अवसर मिलते ही उसे कमजोर कर दो।
2. पड़ोस में ऐसे व्यक्तियों को राजा बनाओ जो आपके प्रभाव में रहे व मित्रवत् ही व्यवहार करने को तत्पर भी हो व बाध्य भी हो।
3. युद्ध के लक्ष्य को प्राप्त करने में अपनी जन हानि, धन हानि व

समयावधि न्यूनतम हो।

4. युद्ध में पड़ोसी व मित्र राजाओं की सेनाओं को आगे रखो ताकि युद्ध में अधिकतम हानि उन्हीं की हो। आपकी स्वयं की शक्ति बची रहे।
5. हारे हुए शत्रु पक्ष को इतनी राहत अवश्य दो कि वह अपने अपमान को भूल जाए व भविष्य में शक्ति संचय करके आपके विरुद्ध विद्रोह या षडयंत्र न करे।
6. शत्रु पक्ष के कुछ असन्तुष्ट व्यक्तियों को अपनी ओर मिलाना युद्ध की महत्त्वपूर्ण नीति होती है।

अब हम देखेंगे कि श्रीराम ने कैसे उपरोक्त नीतियों पर आचरण किया?

1. बाली एक शक्तिशाली राजा था। उससे उत्तर भारत के अयोध्या या अन्य राज्यों को खतरा हो सकता था। अतः उन्होंने बाली को मारना ही उचित समझा।
2. बाली के बाद वहाँ का राज्य उसके छोटे भाई सुग्रीव को दिया जो कि उनका मित्र व कमजोर शासक था।
3. बाली के पास स्वयं की शक्ति के अलावा एक विशाल सेना की शक्ति भी थी जिसके कारण उससे युद्ध लड़कर जीतना बहुत कठिन कार्य था। उसे युद्ध में परास्त करने के लिए उसकी सारी सेना का नाश करना पड़ता। इससे किष्किन्धा की भारी जन हानि व धन हानि होती। वैसा होने पर श्रीराम कौन सी सेना को लेकर लंका अभियान पर जाते।

   यह तो निश्चित है कि लंका विजय के बाद किष्किन्धा व लंका दोनों राज्य निर्बल हो चुके थे। उनका अधिकांश सैन्य बल नष्ट हो चुका था। भविष्य में उनसे अयोध्या राज्य को होने वाले संकट की सम्भावना ही समाप्त हो गई थी। अतः श्रीराम ने बाली का सुग्रीव से मल्ल युद्ध कराकर अपने एक ही तीर से न्यूनतम समय में बिना किसी जन हानि या धन हानि के अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया।
4. बाली का पुत्र अंगद एक वीर योद्धा था। वह भविष्य में अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए विद्रोह कर सकता था। इसलिए श्रीराम ने सुग्रीव को राजा घोषित करने के साथ ही अंगद को युवराज घोषित कर दिया।

इन नीतियों पर विचार करके ही श्रीराम ने बाली को मारने का निर्णय कर अपने सारे उद्देश्य प्राप्त कर लिये। इन नीतियों पर अमल के अनेक उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। जैसे अलाउद्दीन ने छल से चित्तौड़ के महाराणा को कैद कर लिया जबकि किले के अन्दर अलाउद्दीन को छल से राजपूत राजा ने कैद नहीं किया। अकबर ने महाराणा प्रताप से युद्ध करने मानसिंह को ही भेजा व युद्ध में ज्यादा जनहानि दोनों ओर राजपूतों को ही हुई। शिवाजी को पकड़ने के लिए भी जयपुर के राजा जयसिंह को भेजा। अमेरिका ने अपने पड़ोस में क्यूबा को रूस की सहायता से अणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनने से व इजराइल ने अपने पड़ोसी इराक व ईरान को परमाणु शक्ति सम्पन्न होने से रोक रखा है व अपना अस्तित्व बनाये रखा है जबकि भारत अपनी कमजोर नीतियों के कारण पाकिस्तान को परमाणु शक्ति बनने से नहीं रोक सका।

यहाँ पर श्रीराम ने स्पष्ट रूप से यह भी उदाहरण रखा कि व्यक्ति के पारिवारिक व सामाजिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए बनाये गये नैतिक नियम युद्ध की स्थिति में लागू नहीं करने चाहिए। क्योंकि युद्ध तो होता ही तब है जब सारे उचित तरीके असफल हो जाते हैं।

बाद में महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य, व महावीर कर्ण को निहत्थे होने पर भी मारा था। यदि श्री कृष्ण, अर्जुन को प्रेरणा देकर ऐसा न कराते तो युद्ध में पांडवों की जीत असम्भव थी। अभिमन्यु, जयद्रथ, दुर्योधन, जरासंध सभी का मारना छल से ही सम्भव हो सका। इसलिए एक राजा, एक सेनापति एक योद्धा के लिए साम, दाम दंड व भेद की नीतियों का पालन करना उचित ही नहीं अनिवार्य भी है।

आधुनिक युग में भी युद्ध में शत्रु पर धोखे से वार करना, झूठा प्रचार करना, गुप्तचरों से शत्रु के भेद लेना तथा अपने विरोधी व्यक्तियों की हत्या करवाना, शत्रु के आदमियों को रिश्वत देकर भेद लेना आदि युद्ध नीति के अनिवार्य अंग हैं।

श्रीराम ने मात्र एक तीर चलाकर केवल एक व्यक्ति को मारा और विजय प्राप्त कर युद्ध नीति का श्रेष्ठतम उदहारण प्रस्तुत किया।

इससे पूर्व श्रीराम ताड़का वध में भी एक शिक्षा दे चुके थे कि युद्ध में

स्त्री-पुरुष का भी भेद नहीं करना चाहिए। यदि श्रीराम ताड़का को न मारते तो वह उन्हें मार देती। राजीव गाँधी की हत्या भी एक स्त्री ने ही की थी।

इसके विपरीत भीष्म पितामह स्त्री पर वार न करने के कारण व गुरु द्रोण पुत्र-मोह के कारण मारे गये। इस प्रकार यह अपने राजा के प्रति उनका विश्वासघात ही था।

1.11 लंका विजय

सीता-खोज अभियान में बाली वध के पश्चात् सभी दिशाओं में खोज के लिए सुग्रीव के सैनिकों को भेजा जाता है। हनुमान के नेतृत्व में लंका की ओर गये दल को सीता के लंका में कैद होने का पता चलता है। तब श्रीराम किष्किन्धा राज्य की पूरी सेना को सुग्रीव, हनुमान, अंगद, जामवंत आदि के नेतृत्व में तैयार करके लंका की ओर प्रयाण करते हैं। समुद्र के इस ओर अपनी छावनी बनाते हैं। अब आगे श्रीराम एक बहुत ही बुद्धिमान सेनापति होने का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। एक-एक करके उनकी कार्यप्रणाली को देखिये।

1. सबसे पहले हनुमानजी को भेजकर सीता को ढाँढ़स बँधाते हैं कि उसकी रक्षा की जायेगी व रावण को दण्ड दिया जाएगा। महावीर हनुमानजी वहाँ जाकर दो महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। एक तो रावण के भाई विभीषण को अपनी ओर मिला लेते हैं। उससे गुप्त शस्त्र-भंडारों का पता लगाकर उनमें आग लगा देते हैं। इससे अपनी ओर के एक भी सैनिक का बलिदान कराये बिना ही वे लंका की सैन्य शक्ति की कमर तोड़ देते हैं। पूरी लंका में भय व आतंक का वातावरण पैदा कर देते हैं।
2. दूसरे चरण में अंगद को सन्धि प्रस्ताव लेकर भेजते हैं व युद्ध को टालने का हरसम्भव प्रयास करते हैं। संधि प्रस्ताव में मात्र सीता की वापसी व क्षमा याचना का प्रस्ताव ही रखा गया। यहाँ पर श्रीराम ने यह आदर्श रखा कि युद्ध को अन्तिम उपाय के रूप में ही प्रयोग करना चाहिए।
3. युद्ध अनिवार्य होने पर पहले पूरी तैयारी करते हैं। गुप्त रूप से नल व नील जो श्रेष्ठ अभियन्ता थे, का अपहरण कराते हैं व उनसे समुद्र पर

पुल बँधवाते हैं और भी बहुत से अभियन्ता नल नील के साथ लाये गये होंगे। फिर युद्ध में घायलों के उपचार के लिए लंका के ही श्रेष्ठ वैद्य सुषेण का अपहरण कराते हैं। सुषेण के साथ उनके सहायक भी लाये गये होंगे। अनेक औषधि भंडारों से दवाइयाँ इकट्ठा कराई होंगी। तीन दिन तक समुद्र से रास्ता देने की प्रार्थना का अर्थ यह होगा कि तीन दिन तक समुद्र में उथले रास्ते व कड़ी चट्टानों का सर्वे किया गया होगा। हनुमान व अंगद जैसे बड़े वीर तो उसे तैर कर ही पार कर गये होंगे। बाद में वहीं पुल बनाया होगा।

4. पहले समुद्र के इस ओर सुरक्षित दूरी पर रहकर ही गुप्त रूप से लंका की सैन्य शक्ति को काफी हद तक नष्ट कर देने के बाद ही श्रीराम सेना को समुद्र पार करने का आदेश देते हैं।

यहाँ पर एक उदाहरण देना चाहूँगा कि भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू अन्य बहुत सी योग्यताओं के होते हुए भी युद्ध नीति में बिल्कुल निपट मूर्ख सिद्ध हुए। इसीलिए उन्होंने कश्मीर में पहले तो सेना भेजने में ही बहुत देर कर दी। बाद में कश्मीर का एक तिहाई भाग शत्रु के हाथ में छोड़कर अपनी बढ़ती हुई सेना को रोक दिया, जो आज भारत के लिए एक नासूर बन गया है।

दूसरी बार 1962 में बिना शत्रु पक्ष की तैयारी का पता लगाये अपनी सेना को तैयारी का समुचित समय न देते हुए भारतीय सेना को चीनी चौकियों को हटाने का आदेश दे देते हैं। स्वयं वह लंका दौरे पर चले जाते हैं। रक्षा मन्त्री अमेरिका में भाषण कला का प्रदर्शन करते रहे। परिणाम सबके सामने है।

दूसरा उदाहरण इजरायल का है जिसने इराक के परमाणु बम बनाने की आशंका का पता चलते ही उसके संयंत्रों पर हमला करके उन्हें नष्ट कर दिया। हमारे प्रधानमंत्रियों की कायरतापूर्ण नीतियों के कारण ही हमारे पड़ोस में पाकिस्तान आज परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनकर हमारे लिए स्थायी खतरा बन गया है।

5. राजनीति एवं युद्ध नीति का एक और आदर्श उदाहरण श्रीराम मेघनाद यज्ञ का विध्वंस कराकर प्रस्तुत करते हैं। सामान्य दशा में किसी यज्ञ

को विध्वंस करना धर्म विरोधी कार्य माना जाता है किन्तु यदि कोई यज्ञ हमारे ही विनाश के लिए किया जा रहा हो तो उसका नष्ट करना ही हमारा कर्त्तव्य है। उसे नष्ट करने में कोई पाप नहीं है। श्रीराम हनुमान जी को सदल बल भेजकर मेघनाथ का यज्ञ नष्ट करा देते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि मेघनाथ किसी कारखाने में कुछ खतरनाक शस्त्र बनाने में लगा होगा। शत्रु को बलवान बनने से पहले ही उसकी शक्ति को नष्ट कर देने का यह उदाहरण है। बाद में उसे नष्ट करने में अधिक शक्ति खर्च करनी पड़ती है।

6. हम यह भी देखते हैं कि दशरथ, बाली व रावण के मरने के बाद उनकी रानियाँ सती नहीं होतीं बल्कि सम्मानजनक जीवन व्यतीत करती हैं। मेघनाथ की पत्नी सुलोचना के सती होने की कुछ दन्त कथाएँ समाज में प्रचलित हैं किन्तु न वाल्मीकि रामायण में, न तुलसी के रामचरितमानस में सती होने का कोई उल्लेख है। सती प्रथा का प्रचलन करने वालों को यह विचार करना चाहिए था कि यदि सती प्रथा उचित होती तो श्रीराम इसका समर्थन करते, किन्तु ऐसा नहीं है। यह मध्य युग में प्रचलित मनघड़ंत कथा मात्र है।

7. श्रीराम वचन पालन में भी सदैव स्थिर रहें। उन्होंने सुग्रीव, अंगद, विभीषण आदि को दिये वचनों का पूर्णतः पालन किया।

8. श्रीराम यह भी आदर्श हमारे सामने रखते हैं कि धर्म की स्थापना, निर्बल की रक्षा, मित्रों की सहायता, अपनी व परिजनों की रक्षा आदि के कार्य भी आप तभी पूर्ण कर सकते हैं जब आपके पास शक्ति हो। कमजोर राजा, कमजोर व्यक्ति कभी कुछ नहीं कर सकता।

श्रीराम कितने भी सत्यवादी होते, ईश्वर भक्त होते, दयावान, चरित्रवान होते किन्तु यदि वे पर्याप्त शक्तिशाली न होते तो बाली, रावण व अन्य राक्षसों के विरुद्ध कभी सफल नहीं हो सकते थे।

सामान्य पारिवारिक व सामाजिक जीवन में तो 'सत्यमेव जयते' का सिद्धान्त ठीक है किन्तु राजा के लिए तो 'शक्तिमेव जयते' का सिद्धान्त ही सही है। इतना ही पर्याप्त है कि शक्ति का प्रयोग सत्य व धर्म की रक्षा के लिए किया जाए।

1.12 अग्नि परीक्षा

लंका विजय व रावण वध के पश्चात सीता की अग्नि परीक्षा का प्रसंग आता है। इस प्रसंग का तार्किक विवेचन बहुत आवश्यक व महत्त्वपूर्ण है। श्रीराम ने सारी मर्यादाएँ ऐसी स्थापित की हैं कि उनका अनुसरण सामान्य मनुष्य के लिए भी सम्भव हो। यदि श्रीराम कोई ऐसी मर्यादा प्रस्तुत करते कि सामान्य मनुष्य के लिए उसका पालन सम्भव न हो तो सामान्य मनुष्यों के लिए उसका कोई औचित्य ही नहीं हो सकता है।

कथा के अनुसार सीताजी को अग्नि में बैठा दिया जाता है किन्तु अग्नि उन्हें जला नहीं पाती। तभी उन्हें शील हरण के मामले में पवित्र माना जाता है। यह बात सीताजी के प्रति सम्मान प्रकट करने व उन्हें महिमामंडित करने की कवि की भावुक कल्पना मात्र हो सकती है। रामकथा के अधिकांश लेखक, कवि राम के बहुत बाद में हुए हैं और वे कोई आँखों देखे गवाह तो थे नहीं, न ही वे सर्वज्ञ थे।

यहाँ पर वाल्मीकि एवं तुलसीदास यह भूल गये कि वे अपनी अंध राम भक्ति में सीता की अग्नि परीक्षा कराकर कितना बड़ा अनर्थ कर बैठे हैं। भावी समाज के लिए यह उदाहरण हानिकारक सिद्ध हुआ व श्रीराम के चरित्र पर भी कितना बड़ा प्रश्नचिह्न लगा गया। इस घटना का हम निम्न प्रकार परीक्षण करते हैं –

1. पहले तो बलपूर्वक अपहृत की गई किसी नारी से उसकी पवित्रता का प्रमाण माँगना ही पूरी नारी जाति का घोर अपमान व अन्याय है।
2. वाल्मीकि और तुलसी दोनों ही यह भूल गये कि पूरे प्रसंग में सीता का तो कोई दोष नहीं था।
3. वास्तविक बात तो यह है कि 'सतीत्व' या 'शील' कितना भी महत्त्वपूर्ण हो, वह मानव जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि हमारे सारे अच्छे नियम व सिद्धांत मानव जीवन को सुखकर बनाने के लिए ही बनाये गये हैं, न कि मानव जीवन उन सिद्धांतों के लिए बनाया गया है। आखिरकार सारे नियम मानवों द्वारा ही तो बनाये गये हैं।

   सीता को पवित्र दिखाने के लिए ही मजबूरन रावण को भी चरित्रवान दिखाना कवि की मजबूरी हो गई तथा कुबेर पुत्र नल, कुबेर

की प्रेयसी किसी अप्सरा के द्वारा दिये शाप की कथा की कल्पना की गई कि नारी की स्वीकृति के बिना शील हरण करने पर रावण मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।

रावण के द्वारा जिन असंख्य नारियों को अपने में महल में रखा गया व जिन्हें वह बलपूर्वक अपहृत करके लाया था उनके शील हरण पर तो रावण की मृत्यु नहीं हुई या फिर यह माना जाये कि सीता के अलावा सभी नारियों ने स्वेच्छा से रावण को समर्पण किया था।

4. सीता की खोज करना, उसे वापस लाना व अपहर्ता को दण्ड देना श्रीराम का कर्त्तव्य था। कर्त्तव्य भी ऐसा जिसके लिये उन्होंने अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया। श्रीराम ने सीता के शील हरण होने या न होने पर कोई विचार नहीं किया।

5. वैसे वाल्मीकि, तुलसी व अन्य कवि यह सोच भी नहीं सके कि उनके द्वारा कल्पित अग्नि परीक्षा के गलत उदाहरण का हिन्दू समाज को कितना भयंकर परिणाम भुगतना पड़ेगा।

ज्ञात इतिहास में महमूद गजनवी, मौहम्मद गौरी, बाबर, नादिरशाह आदि के आक्रमणों के समय जितनी भी हिन्दू नारियाँ मुसलमानों द्वारा पकड़ ली गई उनमें से कोई भी हिन्दू समाज में वापस नहीं लौट सकी। छूटकर वापस आने पर उन्हें या तो सती होना पड़ा या वापस मुसलमानों के ही घर में रहना पड़ा क्योंकि हिन्दू समाज ने उन्हें अपवित्र मानकर परिवार में स्वीकार ही नहीं किया।

जनसंख्या स्त्रियों से ही बढ़ती है। इस प्रकार हिन्दुओं की जनसंख्या घटती गई व मुसलमानों की बढ़ती गई। क्योंकि इन हिन्दू औरतों के बच्चे भी मुसलमान ही बनें।

भारत में हिन्दू जनसंख्या घटने व मुस्लिम जनसंख्या बढ़ने का एक कारण यह भी रहा कि हिन्दू समाज में 'सतीत्व' को इतना अधिक महत्त्व दे दिया कि राजपूत स्त्रियाँ पराये पुरुषों के हाथ पड़ने की बजाय जौहर करके या सती होकर मर जाना पसन्द करती थी।

अतः बलात अपहृत की गई सीता को ससम्मान स्वीकार करके श्रीराम ने क्रांतिकारी आदर्श सामने रखा।

1.13 रामराज्य

लंका विजय के पश्चात् श्रीराम अयोध्या राज्य में प्रवेश करने से पूर्व हनुमान को भेजकर भरत की मनःस्थिति का पता लगाते हैं कि भरत उनके अयोध्या लौटने के इच्छुक हैं भी या नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि चौदह वर्षों तक राजा बने रहने पर भरत का मन ही बदल गया हो और वे स्वयं ही राजा बने रहना चाहते हो। भरत के लिए ऐसी बाध्यता नहीं थी कि वे राजसिंहासन राम को सौंप ही दें। यहाँ पर श्रीराम, भरत, उर्मिला, लक्ष्मण आदि सभी त्याग व कर्त्तव्य की साकार प्रतिमा ही बने प्रतीत होते हैं। ये सब आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श उपस्थित करते हैं।

राज्य व्यवस्था भी श्रीराम ऐसी करते हैं कि –

दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज्य काहूं नहीं व्यापा।।

श्रीराम यह मानकर चले कि –

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

सारी प्रजा को पुत्रवत् मानने के श्रीराम के इसी आदर्श का अनुसरण करते हुए अपने चार पुत्रों की मौत पर गुरु गोविन्द सिंह कहते हैं –

चार मुवे तो क्या हुआ, जब जीवित चार हजार।

उनका राज्य सर्वोत्तम न्याय व्यवस्था, सुख सम्पन्नता का प्रतीक ही बन गया। पड़ोस के मथुरा राज्य के एक राजा लवणासुर ने श्रीराम के पूर्वज राजा मान्धाता को मार दिया था। उसका बदला लेने के लिए व भविष्य में लवणासुर के खतरे को समाप्त करने के लिए शत्रुघ्न के नेतृत्व में सेना भेजकर लवणासुर को पराजित कर उसका राज्य शत्रुघ्न को सौंपते हें। भरत भी गंधर्व देश पर आक्रमण कर वहाँ का राज्य अपने पुत्रों को सौंपते हैं। इस प्रकार श्रीराम ने अपने राज्य की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जो कि एक अच्छे राजा का कर्त्तव्य होता है।

1.14 सीता वनवास

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में बहुत-सी प्राचीन इतिहास की कथाएँ दी गई हैं। इनमें पात्रों के चरित्र रहस्य-रोमांच से भरे व अलौकिक

शक्तियों व घटनाओं से भरे हैं जो काल्पनिक कथाओं के प्रतीत होते हैं।

इन्हीं में एक कथा में पुरवासियों के मुख से सीता के बारे में यह चर्चा सुनी कि जैसे पर पुरुष के अधिकार में रहने के बाद भी श्रीराम ने सीता को स्वीकार कर लिया वह ठीक नहीं है। भविष्य में भी ऐसी स्त्रियों को स्वीकार करना पड़ेगा जो पर पुरुषों के यहाँ रह आयी हैं। श्रीराम न चाहते हुए भी दुःखी मन से सीता का परित्याग कर देते हैं। सीता को पुत्र जन्म महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ही होते हैं। किन्तु तुलसीदास जी को पूरा प्रसंग प्रक्षिप्त अंश लगा होगा क्योंकि यह प्रसंग श्रीराम के चरित्र से मेल नहीं खाता। अतः उन्होंने 'रामचरित मानस' में इस प्रसंग को सम्मिलित नहीं किया। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड की अन्य कथाओं को भी छोड़ दिया है।

तुलसीदास ने – '**दुई सुत सुन्दर सीता जाये। लव कुश वेद पुरातन गाये।।**' लिखने के बाद रामकथा का समापन कर दिया है। बाद के कुछ कवियों ने कुछ कथानक रामकथाओं में जोड़ दिये। इसमें प्रक्षिप्त होने के समर्थन में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं-

1. अग्निपरीक्षा प्रकरण में हम सिद्ध कर चुके हैं कि पूरे प्रकरण में सीता पूर्णतः निर्दोष थी। अतः उन्हें किसी प्रकार का दण्ड देना न्यायिक सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध था, जो श्रीराम जैसे सिद्धान्त प्रिय व्यक्ति के द्वारा सम्भव ही नहीं था। वास्तविक बात यह है कि लव कुश का जन्म राजमहलों में हुआ। वहीं उनका पालन पोषण हुआ।
2. यदि यह मान लें कि कुछ व्यक्तियों के कहने से श्रीराम ने सीता त्याग का मन बना लिया होगा तो भी बात जँचती नहीं। क्योंकि जब श्रीराम ने ससम्मान सीता को स्वीकार किया था तो वे भली भाँति जानते थे कि लोगों को कोई नहीं रोक सकता व ऐसा प्रसंग आने पर कैसे उसका उत्तर दिया जायेगा, इस पर श्रीराम ने अवश्य ही विचार किया होगा।
3. पूरे प्रकरण में सीता को सफाई का कोई अवसर नहीं दिया गया जो न्याय के प्राकृतिक सिद्धांतों के विरुद्ध है। यहाँ तक कि सीताजी को दण्ड की कोई पूर्व सूचना भी नहीं दी गई। सीताजी गर्भवती है। एक गर्भवती महारानी को लावारिस जंगल में छोड़ देना सामान्य मनुष्य के लिए भी घोर कलंक की बात है। जरा सोचें कि यदि सीताजी को

वाल्मीकि आश्रम में शरण न मिलती तो क्या होता? उन्हें कोई राक्षस या डाकू फिर अपहृत कर ले जाता तो क्या होता?

क्या श्रीराम के द्वारा सीताजी को ऐसे संकट में डाला जा सकता था? कदापि नहीं। क्या सारी मंत्री परिषद्, ऋषि, मुनि, गुरु आदि इतने हृदयहीन हो गये होंगे? कदापि नहीं।

4. जिस व्यक्ति ने सीता परित्याग की कथा की कल्पना करके उसे रामकथा से जोड़ा वह घोर नरक का अधिकारी है। क्योंकि उसने श्रीराम के चरित्र को भी बदनाम किया है। हिन्दू समाज के सामने एक गलत उदाहरण रखा जिससे बाद में हिन्दू समाज को भारी हानि उठानी पड़ी। इन कहानियों का जिक्र हम अग्नि परीक्षा प्रसंग में कर चुके हैं।

5. वर्तमान काल में रामानन्द सागर ने टी.वी. पर धारावाहिक 'रामायण' का फिल्मांकन राम के राज्याभिषेक के बाद समाप्त कर दिया था। किन्तु समाज के कुछ वर्गों की ओर से माँग उठने पर (विशेषकर दलित समाज) कुछ अन्तराल के बाद सीता वनवास के प्रसंग का फिल्मांकन आरम्भ किया। इस भाग के मुख्य नायक महर्षि वाल्मीकि हैं, जिन्हें वाल्मीकि समाज के लोग अपना श्रद्धा पुरुष मानते हैं।

1.15 शंबूक वध

वाल्मीकि रामायण तथा अन्य रामकथाओं में 'शंबूक वध' की कथा आती है। यह भी सीता वनवास की तरह बाद में किसी कुत्सित मानस की सृजित की गई काल्पनिक कथा मात्र है। इसी कारण तुलसीदास जी ने इस प्रसंग को अपने 'रामचरित मानस' में स्थान नही दिया। वाल्मीकि 'रामायण' में भी यह कथा भी उत्तरकांड में ही सीता वनवास व अन्य बहुत सी कथाओं के बीच में दी गई है।

वाल्मीकि रामायण की कथा के अनुसार, एक ब्राह्मण का पुत्र युवावस्था में मर जाता है तो उस समय के ऋषि-मुनियों ने उसका कारण यह बताया कि राम तुम्हारे राज्य में 'शंबूक' नाम का एक शूद्र तपस्या कर रहा है, इसी कारण ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हुई है। तब श्रीराम 'शंबूक' का वध कर देते हैं।

एक अन्य लोक कथा में बताया गया कि श्रीराम के राज्य में अनेक

वर्षों से वर्षा नहीं हो रही थी। उसका कारण भी शंबूक के तपस्या करने को ही बताया गया। इस पर भी श्रीराम शंबूक का वध कर देते हैं।

बाद के किसी कवि ने सीता वनवास व शंबूक वध की कथा लिखकर महर्षि वाल्मीकि को भी बदनाम किया व श्रीराम के चरित्र को भी कलंकित किया है।

इसी उदाहरण के कारण तमाम अनुसूचित जाति व जनजाति के लोग ब्राह्मणों व क्षत्रियों से घृणा करने लगे। श्रीराम को अपना प्रेरणास्रोत, श्रद्धा पुरुष मानना बंद कर दिया। बल्कि अब तो अपने आपको हिन्दू मानने से भी इंकार करने लगे हैं। शंबूक वध की तर्ज पर ही अनेक अन्य कुरीतियों का प्रचार-प्रसार भी मध्य युग में हुआ जो आज सामाजिक विघटन का कारण बनता जा रहा है।

सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, छुआछूत, ऊँच-नीच आदि की कुप्रथाएँ हिन्दू समाज में जिन लोगों ने फैलाई उन्होंने ही शंबूक वध व सीता वनवास आदि की कथा इन कवियों के नाम से जोड़ी होंगी।

ध्यान देने की बात है कि शूद्र का तपस्या करना कोई अपराध नहीं हो सकता। ऐसा होता तो पहले महर्षि वाल्मीकि व शबरी का वध किया जाता। किन्तु श्रीराम के लिए दोनों ही श्रद्धेय हैं। वैसे भी तपस्या करना आध्यात्मिक उन्नति का साधन माना जाता हे। जिस राम ने जीवन भर तपस्वियों की रक्षा की वह स्वयं किसी तपस्वी की हत्या कैसे कर सकते है? अतः शंबूक वध का श्रीराम से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह मात्र काल्पनिक प्रसंग है।

पाँचवी छठी सदी ईसा पूर्व भारत में बौद्ध व जैन धर्म का उदय हुआ। उन्होंने पुरानी वैदिक व पौराणिक परम्पराओं का विरोध किया। अपने धर्म को श्रेष्ठ एवं वैदिक व पौराणिक सनातन धर्म को पाखण्ड सिद्ध करने की काफी चेष्टा इन धर्मों के प्रचारकों ने की है। इन्हीं प्रचारकों ने अनेक झूठे काल्पनिक कथानकों को गढ़ा व उनका प्रचार प्रसार किया है। बौद्धों के 'दशरथ जातक' में राम के चरित्र के बारे में अनेक कथाएँ जोड़ी गईं। जैसे राम की एक बहन (शांता) की काल्पनिक कथा में उसे सीता की चुगली खाते दिखाया गया।

इसी प्रकार सनातन धर्म महाविद्यालय मुजफ्फरनगर के पूर्व विभागाध्यक्ष

डा. कृष्णचन्द्र गुप्त जो मुजफ्फरनगर के चोटी के साहित्यकारों में से एक हैं, उन्होंने मुझे बताया कि वे एक जैन मन्दिर, हस्तिनापुर को देखने वर्ष 1996 में गये थे। वहाँ पर उन्होंने देखा कि मन्दिर में एक जैन तीर्थंकर के सामने चार नग्न साधुओं के चित्र दीक्षा लेने की मुद्रा में हाथ जोड़े खड़े बने हैं। चारों चित्रों के नीचे नाम लिखे थे — राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न। कुछ वर्षों बाद वे फिर उसी मन्दिर में गये तो चित्रों की जगह दीवार पर राम दरबार बना दी गई थी। अतः शंबूक वध की कथा बाद में राम के चरित्र को कलंकित करने के लिए लिखी गई है।

दक्षिण भारत के कुछ तमिलभाषी कवियों ने अम्बेडकर की विचारधारा से प्रभावित होकर भी श्रीराम को कलंकित करने के लिए कुछ साहित्य लिखा है। उनके लिए यह किसी हद तक स्वाभाविक भी है। क्योंकि इस क्षेत्र के लोग तो हैं ही रावणवंशीय। वे रावण को नायक व श्रीराम को खलनायक ही मानेंगे।

इसके अतिरिक्त चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन ने भी श्रीराम, सीता, हनुमान, विष्णु आदि के चरित्र हनन का प्रयास अपने चित्रों द्वारा किया। विरोध होने पर वह इस्लामिक देशों में भाग गया व वहीं मरा।

1.16 परलोक गमन

अनेक वर्षों तक न्यायपूर्वक शासन करने के पश्चात् श्रीराम वृद्धावस्था में भाइयों सहित सरयू में समाधि लेते हैं। आजकल 'शंबूक वध' की कथा के कारण श्रीराम के चरित्र पर जो आक्षेप लगाये जाते हैं, उनके कारण बहुत से अम्बेडकरवादी अनुसूचित जातियों के लोग श्रीराम के प्रति अपमानजनक टिप्पणी करते पाये जाते हैं। पन्नालाल इण्टर कालेज सहसवान, जिला बदायूँ में कार्यरत संस्कृत के प्रवक्ता श्री चिरौंजीलाल 'चंचल' जो जाति से 'जाटव' थे व मेरे घनिष्ठ मित्र थे, ने मुझे बताया था कि 'चारों भाई आत्मग्लानि व गृहकलह के कारण नदी में डूबकर मरे थे।'

उक्त टिप्पणी पर हम विचार करते हैं। श्रीराम जैसे विराट् आत्मबल वाले व सिद्धान्तों का पालन करने वाले व मर्यादाओं की स्थापना करने वाले महामानव के जीवन की घटनाओं की व्याख्या सामान्य तर्कों के आधार पर

नहीं की जा सकती। बहुत से रहस्य हैं, जिनकी व्याख्या उन्हीं के समकक्ष व्यक्ति कर सकते हैं। उन दिनों भारत में योग विद्या व अध्यात्म विद्या अपने चरम पर थी। अतः उनके कारण कुछ विभूतियों में विलक्षण शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे गौतम बुद्ध, ईसा मसीह, पैगम्बर मौहम्मद साहब, गुरु नानक देव आदि के जीवन की कुछ घटनाओं की व्याख्या सामान्य तर्क के आधार पर नहीं की जा सकती। स्वामी रामतीर्थ ने टिहरी में अलकनन्दा नदी में जल समाधि ली थी। स्वामी रामतीर्थ गणित में एम.ए. थे। ब्रिटेन व भारत के विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे। उच्च कोटि के संत थे। उन्हें तो कोई आत्मग्लानि व गृह क्लेश नहीं था।

1982 में संत विनोबा भावे ने मृत्यु का आभास होने पर कई दिन पूर्व दवा व भोजन लेना बन्द कर दिया था व ठीक दीपावली के दिन मृत्यु को प्राप्त हुए थे। ईसा मसीह मरते समय भी मनुष्यों की मंगल कामना कर रहे थे। राणा प्रताप मृत्यु के समय भी स्वतंत्रता की चिन्ता कर रहे थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जहर देने वाले रसोइये की जीवन रक्षा का प्रबन्ध खुद किया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो लोग जीवन में विलक्षण रहे उनमें से बहुत से लोगों की मृत्यु भी विलक्षण रही है। जो सामान्य जन के तर्कों से परे की बात है।

अतः श्रीराम के भाइयों सहित जल समाधि भी किसी आध्यात्मिक प्रक्रिया द्वारा मृत्यु वरण ही है।

1.17 राम के अस्तित्व का प्रश्न

कुछ चर्चा उनकी भी करते चलें जो लोग श्रीराम के अस्तित्व को ही काल्पनिक मानते हैं। उनमें एक वर्ग तो अम्बेडकरवादी विचारधारा वालों का है जिन्होंने श्रीराम के चरित्र को कलंकित करने का अभियान सा छेड़ रखा है। कारण मात्र श्रीराम का 'क्षत्रिय' होना व 'शंबूक वध' कथा है। वे शंबूक वध को क्षेपक मानने को ही तैयार नहीं। उन्हें तो घृणा फैलाने का अवसर मिलना चाहिए। दूसरा वर्ग अंग्रेजी माध्यम से उच्च शिक्षा प्राप्त वर्ग है जिन्हें पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध में प्राचीन भारतीय सभ्यता में कुछ भी श्रेष्ठ दिखता ही नहीं।

खैर, यदि हम यह मान भी लें कि श्रीराम कथा काल्पनिक है तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। ईश्वर को भी लोग मानते ही हैं, वह भी किसी ने नहीं देखा। ईश्वर का जैसा विवरण ज्यादातर धार्मिक पुस्तकों में मिलता है वह भी सिद्ध नहीं किया जा सकता फिर भी हम ईश्वर के अस्तित्व को मानने से काफी बुरे कार्यों से बच जाते हैं। अच्छे कार्य करने की प्रेरणा पाते हैं।

इस प्रकार महत्त्व इस बात के पचड़े में पड़ने का नहीं है कि वास्तविक जीवन में श्रीराम ने क्या किया व क्या नहीं किया। महत्त्व इस बात का है कि महाकवि वाल्मीकि और तुलसीदास जी ने राम के चरित्र के द्वारा हमारे सामने जो आदर्श रखे हैं, वैसा बनने का प्रयत्न करें। श्रीराम का चरित्र अनुकरणीय है।

इस प्रकार श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं व उनके आदर्शों पर चलकर हम अपने देश व इस संसार को ही स्वर्ग समान सुन्दर बना सकते हैं। श्रीराम भी 'साकेत' में कहते हैं –

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

अतः श्रीराम की सच्ची भक्ति उनके आदर्शों पर चलने में है। अपने को उन जैसा बनाने के प्रयत्न में है। केवल राम का नाम लेना व उनकी मूर्ति पूजा करना पर्याप्त नहीं है। अपने इन्हीं विचारों के साथ मैं मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, सीता, उर्मिला, मांडवी आदि के चरणों में अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ।



महाभारत के पात्र

प्राचीन काल से ही ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि राजा अपने दरबार में कवियों को राजाश्रय देते थे। ये कवि चूँकि राजा की ओर से भरण, पोषण, पारितोषिक तथा भरपूर सम्मान भी पाते थे। अतः कवि अपने आश्रयदाता राजा की प्रशंसा में काव्य लिखते थे, जो स्वाभाविक ही था।

इतना ही स्वाभाविक यह तथ्य भी था कि अपने समय के आश्रयदाता राजा को बुरा दिखाना, उसे खलनायक बनाना या उसकी असफलताओं को काव्य का विषय बनाने का साहस करना राजा के कोपभाजन बनने का कारण बन सकता था तथा राजाश्रय तो छिनना निश्चित ही होता।

अतः प्राचीन काल के अनेक काव्यों में अनेक घटनाओं व चरित्रों को भी कवियों ने ऐसे ढंग से रखा कि उनके आश्रयदाता तो नायक के रूप में व उनके शत्रु खलनायक के रूप में चित्रित किये गये। 'पृथ्वीराज रासो', 'जयचन्द्र जस चन्द्रिका', 'वीसल देव रासो' आदि में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। एक ही घटना के वर्णन में हिन्दू कवियों व मुस्लिम लेखकों के विवरण में विरोधाभास भी इसी कारण पाया जाता है।

मैंने बचपन में अपने बुजुर्गों से महाभारत की कथाएँ सुनी थी। अनेक किताबों में भी पढ़ी थीं। अपने देश के वीर पुरुषों के प्रति भारी श्रद्धा व आदर से मेरा हृदय ओतप्रोत रहा है। 16-17 वर्ष की आयु में मुझे 'सरिता' पत्रिका के कुछ लेख पढ़ने को मिले तो तथ्यों को एक नये दृष्टिकोण से देखने-समझने की प्रवृत्ति जाग्रत हुई। इससे मुझे लगा कि 'महाभारत' के वर्तमान स्वरूप में घटनाओं को इस प्रकार लिखा गया है कि पांडव पक्ष वीर व न्यायकारी लगे तथा कौरव पक्ष अन्यायकारी, अधर्मी व कमजोर लगे।

इसके लिए पूरे ग्रंथ की विषयवस्तु की विवेचना करने के बजाय केवल उन घटनाओं व चरित्रों पर विचार करेंगे जो लोकमानस में सर्वमान्य रूप से प्रचलित हैं व जिनका विवरण महाभारत व उससे सम्बन्धित लगभग सभी पुस्तकों में मिलता है। महाभारत के बारे में बताया जाता है कि पहले व्यासजी ने 'जय' काव्य लिखा फिर 'वैशंपायन' ने उसमें अन्य कथाएँ जोड़कर उसे 'भारत' के रूप में बड़ा ग्रंथ कर दिया। फिर 'सूत जी' ने उसे 'महाभारत' का रूप दिया जो वर्तमान में मिलता है।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र बताये गये हैं किन्तु चार-पाँच नामों से ज्यादा की जानकारी नहीं मिलती। इनमें से तीन नामों पर ध्यान दे तो ये हैं क्रमशः दुर्योधन, दुःशासन व दुःकर्ण।

दुर्योधन का अर्थ है बुरा योद्धा या बुरा धन तथा दुःशासन का अर्थ होता है बुरा शासन करने वाला तथा दुःकर्ण का अर्थ होता है बुरे कानों वाला। क्या कोई राजा अपने राजकुमारों के नाम ऐसे बुरे अर्थों वाले रख सकता था? मेरे विचार से कदापि नहीं। उस जमाने में भी अधिकांश नाम अच्छे अर्थों वाले राशि आदि के अनुसार ही रखे जाते थे। मैंने अपने बचपन में 'महाभारत' पर आधारित कई फिल्में देखी थी। उनमें भी 'श्रीकृष्ण' को छोड़कर अन्य पात्र तो उनका सम्बोधन दुर्योधन, दुःशासन आदि की करते हैं किन्तु भगवान श्री कृष्ण जब भी सम्बोधित करते हैं तो 'सुयोधन' ही कहते हैं। फिल्मों के संवाद लेखकों को भी कहीं न कहीं से यह आधार मिला ही होगा। अतः यदि वे भगवान कृष्ण के मुख से भी 'दुर्योधन' ही कहलवाते तो इससे भगवान कृष्ण की महिमा ही घटती। क्योंकि दुर्योधन तो उसको चिढ़ाने के लिए बिगाड़कर रखा गया नाम ही रहा होगा। यदि श्रीकृष्ण के मुख से भी अन्य पात्रें की तरह 'दुर्योधन' ही कहलवाते तो भगवान कृष्ण व अन्य पात्रों के चरित्रों में अन्तर ही क्या रह जाता। किसी न किसी ग्रंथ में फिल्मकारों को कोई ऐसा संदर्भ मिला ही होगा जिसके आधार पर 'सुयोधन' सम्बोधन श्रीकृष्ण के मुख से कराया है। यही बात 'दुःशासन' व 'दुःकर्ण' शब्दों के साथ भी प्रतीत होती है। वास्तविक नाम 'सुशासन', 'सुकर्ण' रहे होंगे।

अतः यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि जब 'महाभारतकार' ने नामों में ही इतना उलट-फेर कर दिया तो विजेता पक्ष के गुणगान करने के लिए व पराजित पक्ष को अन्यायी, अधर्मी सिद्ध करने के लिए अन्य

घटनाओं को कितना तोड़-मरोड़ कर लिखा होगा? कौरवों के पक्ष को निन्दा योग्य सिद्ध करने के लिए अनेक कपोल कल्पित घटनाएँ व कथानक जोड़े हो तो असम्भव नहीं लगता। किन्तु हम यहाँ केवल सुपरिचित घटनाओं पर ही ध्यान देंगे। सारे तथ्य 'महाभारत' से ही लेंगे।

2.1 दुर्योधन

दुर्योधन को महाभारत में सबसे बड़ा खलनायक दिखाया गया है किन्तु हमारी राय में दुर्योधन एक वीर योद्धा था। उसने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए अपने शत्रुओं से पूरी वीरता से लोहा लिया व कभी दीनता या पलायन का रास्ता नहीं अपनाया। युद्ध भी हारा तो अपने सेनापतियों व मंत्रियों के विश्वासघात के कारण तथा पांडव पक्ष के छल-कपट भरे कार्यों के कारण। अब हम एक-एक करके अनेक तथ्यों की विवेचना करेंगे।

दुर्योधन की आयु

पूरे महाभारत में युद्ध का मुख्य आधार यह है कि दुर्योधन उम्र में युधिष्ठिर से छोटा था। अतः परम्परा के अनुसार गद्दी पर बड़े होने के कारण युधिष्ठर का अधिकार था। छोटे होने के कारण ही भीम व अर्जुन ने कभी राजगद्दी की माँग नहीं की जबकि वे दोनों युधिष्ठर से ज्यादा शूरवीर थे। जरा निम्न बातों पर ध्यान दें –

1. महाभारत में आये किसी प्रमाण के आधार पर तो नहीं अनुमान के आधार पर एक शंका उत्पन्न होती है। धृतराष्ट्र, पांडु से बड़े बताये जाते हैं। इस आधार पर उनको सन्तान भी पहले होने की सम्भावना बनती है। विवाह भी पहले धृतराष्ट्र का ही होना बताया गया है। अतः यह सम्भावना बनती है कि पुत्र भी धृतराष्ट्र को ही पहले हुए होंगे। अतः यह सम्भव है कि दुर्योधन उम्र में बड़ा हो। किन्तु युधिष्ठर की राजगद्दी की माँग को उचित ठहराने के लिए ही उसे युधिष्ठर से छोटा होना बता दिया गया हो।
2. पांडु की शादी तो धृतराष्ट्र के बाद हुई ही, साथ ही रोगी होने के कारण पांडु को सन्तान नहीं हुई। कई वर्षों तक प्रतीक्षा करने के बाद ही पांडु

अपनी पत्नियों को लेकर वन को गये। शायद वहाँ भी पहले अनेक प्रकार की चिकित्सा कराई होगी। जब चिकित्सा से सन्तान होना सम्भव नहीं हुआ होगा तभी नियोग का सहारा लेने का विकल्प चुना गया होगा। नियोग प्रथा का वर्णन वेदों में आता है कि पति के अयोग्य होने की दशा में पत्नी अपने मनपसंद पुरुष से तीन सन्तान प्राप्त कर सकती है। इसी कारण पहले कुन्ती ने स्वयं तीन सन्तान प्राप्त की। फिर माद्री से सन्तान उत्पन्न करने को कहा। क्योंकि नियोग में तीन से अधिक सन्तान उत्पन्न करने पर निषेध है।

नियोग की बात पर शालीनता का आवरण डालने के लिए ही इस कथा की कल्पना की गई होगी कि कुन्ती को मन्त्रों द्वारा देवताओं को बुलाने का वरदान प्राप्त था। इस स्थिति में यह निश्चित है कि पांडु को सन्तान कई वर्षों बाद हुई होगी। अतः इस बात की प्रबल सम्भावना है कि दुर्योधन आयु में युधिष्ठर से बड़ा था। अतः आयु के आधार पर गद्दी का पहला अधिकारी था। पहली पीढ़ी में भी धृतराष्ट्र बड़े थे। अतः बड़े भाई का बड़ा बेटा होने के कारण भी दुर्योधन का ही अधिकार सिद्ध होता है।

महाभारतकार ने पांडवों के पक्ष को न्यायसंगत ठहराने के लिए ही दुर्योधन को छोटा भाई बताया है व युधिष्ठिर को बड़ा भाई। अन्य कारणों पर आगे विचार करेंगे।

चरित्र

1. यदि दुर्योधन इतना ही बुरा था तो बलराम ने क्यों भीम व दुर्योधन को गदा युद्ध की शिक्षा समान रूप से दी?
2. महाभारत युद्ध के समय बलराम ने किसी एक का पक्ष लेने की बजाय तीर्थयात्रा पर जाना क्यों पसन्द किया? बलराम पांडवों की ओर से क्यों नहीं लड़े?
3. कौरव अगर इतने ही बुरे थे तो बलराम अपनी बहन सुभद्रा का विवाह राजकुमार लक्ष्मण से क्यों करना चाहते थे? ज्ञात हो कि सुभद्रा का विवाह लक्ष्मण से टालने के लिए ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन से उसका अपहरण करवाया था।

4. यदि दुर्योधन इतना ही बुरा था तो उसके किसी भाई ने उसका विरोध क्यों नहीं किया? इसके विपरीत अपने बड़े भाई के पक्ष में लड़ते-लड़ते सभी वीरगति को प्राप्त हो गये। यह इस बात का प्रमाण है कि दुर्योधन अपने भाइयों को बहुत प्यार व पूर्ण सम्मान देता होगा।
5. यदि दुर्योधन इतना ही बुरा था तो क्यों भीष्म पितामह, गुरु द्रोण व स्वयं पांडवों के मामा शल्य युद्ध में उसकी ओर से लड़े। लड़े ही नहीं अपने प्राणों का बलिदान तक कर दिया।
6. स्वयं दुर्योधन कितना बड़ा वीर योद्धा था, यह इस बात से प्रमाणित है कि पांडव पक्ष के सबसे बड़े योद्धा भीमसेन भी गदा युद्ध में दुर्योधन को जब नहीं हरा सके तो छल से नियम विरुद्ध वार करके ही उसे मारने में सफल हो सके। अपने अन्तिम युद्ध में भी दुर्योधन ने वीरोचित नियमों का पालन किया। भीमसेन पर छल से वार नहीं किया। दुर्योधन का शरीर वज्र का हो जाने की कवि कल्पना तो मात्र भीमसेन को नियम भंग का दोषी होने से बचाने के लिए की गई प्रतीत होती है।
7. दुर्योधन कितना वीर योद्धा था। युद्ध में भी उसने नैतिकता के कैसे मानदण्ड स्थापित किये, उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। अन्तिम युद्ध में दुर्योधन का सामना भीमसेन से होता है। उस समय भीमसेन तो पूरे कौरव वंश का विनाश होने के कारण युद्ध जीत चुके थे। आवश्यकता पड़ने पर उसके सारे सहायक, श्रीकृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर पूरे सैन्य बल के साथ उसकी सहायता को मौजूद थे जबकि दुर्योधन केवल मरने के लिए ही युद्ध कर रहा था। या तो वह भीम के हाथों मारा जाता और यदि वह भीम को मार भी देता तो उस दशा में श्रीकृष्ण, अर्जुन, नकुल, सहदेव व सैनिक उस पर टूट पड़ते व उसे मार डालते। दोनों ही स्थितियों में दुर्योधन की मृत्यु तो निश्चित थी।

   युद्ध में जब किसी एक पांडव से युद्ध करने के बारे में उससे पूछा जाता है तो भी वह अपने बराबरी के योद्धा भीम से ही युद्ध करने को प्राथमिकता देता है। युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव को तो उसने इस काबिल भी नहीं समझा कि उनसे लड़े।

इसके अलावा साक्षात् मृत्यु को सिर पर देखकर भी दुर्योधन ने भीम पर नियम विरुद्ध कोई वार नहीं किया जबकि भीम ने ऐसा किया। जब कोई व्यक्ति यह जान लेता है कि कुछ ही मिनटों या घंटों में मार दिया जायेगा व शत्रुओं के पूर्णतः कब्जे में फँस गया हो तो वह मन से टूट जाता है। उसकी सभी शारीरिक शक्तियाँ जवाब दे जाती हैं। हाथ-पैर बेजान से हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में भी दुर्योधन पूरी शक्ति से लड़ा और वीरगति पाई। यह उसकी वीर भावना का सबसे बड़ा सबूत है। युद्ध में पूर्ण पराजय के बाद दुर्योधन स्वयं युद्ध से हट गया था किन्तु उसे पांडवों द्वारा खोजकर मरने को विवश किया गया। उस समय पांडवों के पास पाने को व दुर्योधन के पास खोने को उसके प्राणों के अलावा कुछ न था।

राजगद्दी पर अधिकार की माँग

1. दुर्योधन पर सबसे बड़ा आरोप यह लगाया जाता है कि उसने राजगद्दी पर अधिकार माँगा। यहाँ पर दुर्योधन की माँग पूर्णतया न्यायोचित थी। पहला कारण तो यह था कि उसके पिता ज्येष्ठ भ्राता होने के कारण राजसिंहासन के परम्परागत अधिकारी थे। यदि राजा धृतराष्ट्र को बनाया गया होता तो दुर्योधन स्वयं ही युवराज घोषित हो जाता। वह अपने व पिता के इस दुर्भाग्य से सदा ही दुःखी रहा होगा कि उसके पिता अंधे न होते तो आज ये समस्याएँ न खड़ी होती।
2. अंधे होने के कारण यदि धृतराष्ट्र गद्दी के अधिकारी नहीं थे तो फिर बीमार होने के कारण पांडु भी कोई बहुत योग्य उम्मीदवार नहीं थे। उन्हें पीलिया रोग था जिसके कारण बाद में सन्तानोत्पत्ति के भी वह अयोग्य हो गये थे। कोई अन्य उत्तराधिकारी न होने के कारण मजबूरी में ही उन्हें राजा बनाना पड़ा। बाद में भी वे अयोग्य ही सिद्ध हुए व राजकार्य सँभालने में असफल रहने के कारण ही वन को चले गये।
3. जब पांडु वन को गये तब भी तो राजगद्दी पर धृतराष्ट्र को ही बैठाना पड़ा। धृतराष्ट्र उम्र भर भीष्म, द्रोण आदि तथा अपने मंत्रियों की

सहायता से राज्य सँभालते रहें।

4. एक बात और ध्यान देने की है कि जब वन में पांडु की मृत्यु हुई तो गद्दी पर धृतराष्ट्र ही बैठे थे। अतः उनका पुत्र राजगद्दी का अधिकारी स्वाभाविक तौर पर था।

5. यदि आरम्भ में ही पांडु राजा न होते या गद्दी भरत के उदाहरण की तरह बड़े भाई की मानकर उनके प्रतिनिधि (जैसे भरत ने किया) की तरह राज्य का संचालन करते तो बात ही दूसरी होती। दुर्योधन राज्य का उत्तराधिकारी होता। किन्तु पांडु ने ऐसा नहीं किया, फिर भी पांडु अच्छे थे।

6. यहाँ पर धृतराष्ट्र की उदारता देखिये कि उसने पांडु को राजा मान भी लिया व निभाया भी।

7. लेकिन सोचिये कि पहले तो धृतराष्ट्र को और फिर दुर्योधन को इस बात का कितना क्षोभ रहा होगा कि उनको अन्यायपूर्वक राजगद्दी से वंचित कर दिया गया।

8. जब पांडु की मृत्यु हुई तो राजगद्दी पर धृतराष्ट्र बैठे थे। उनकी पीढ़ी में अब वे अकेले राज्य के उत्तराधिकारी थे। राजकुमारों का नम्बर तो उनके बाद ही आना चाहिए था।

9. यहाँ पर विदुर के साथ हुए अन्याय का भी जिक्र करते चलें कि पांडु व धृतराष्ट्र दोनों भाइयों की अयोग्यता की स्थिति में विदुर को राजा बनाया जा सकता था। आखिर तीनों के पिता एक ही थे। दासी भी नारी ही होती है। जब दासी से पुत्र उत्पन्न करने में राजा की इज्जत नहीं घटती तब दासी ही क्यों रानी से कम समझी जाए व उसके पुत्र को राजा क्यों नहीं बनाया जा सकता था?

   अपने प्रति हुए इस अन्याय व अपमान के कारण क्या ऐसा नहीं हो सकता कि विदुर दोनों पक्षों के प्रति मन में द्वेष रखते हों और गुप्त रूप से दोनों को एक-दूसरे के विरुद्ध उकसाते रहते हों। इस भावना पर विदुर प्रकरण में प्रकाश डालेंगे।

10. पांडु की मृत्यु के बाद दुर्योधन का यह सोचना स्वाभाविक था कि

पाँचों पांडवों में कोई भी अपने पिता पांडु की सन्तान नहीं हैं। पाँचों भाई नियोग द्वारा अलग-अलग पिताओं की सन्तान थे। अतः उनमें से किसी में भी कुरु वंश का रक्त नहीं था। ऐसी स्थिति में दुर्योधन एकमात्र ज्येष्ठ राजकुमार होने के कारण राज्य का स्वाभाविक अधिकारी था। ऐसी स्थिति में उसने राजगद्दी चाही तो क्या गलत किया?

11. अन्यायपूर्ण पक्ष तो पांडवों का था कि पहले तो उन्होंने पूरा राज्य चाहा। जब पूरा राज्य न मिल पाया तो आधा राज्य लेकर ही रहें। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि एक तो हस्तिनापुर राज्य की शक्ति आधी रह गई। दूसरे दुर्योधन का एक प्रतिद्वंद्वी राज्य उसी के राज्य में खड़ा हो गया।

    राज्य का बँटवारा सबसे बड़ी राजनैतिक भूल थी। यदि यह परम्परा चल निकले तो राज्य के छोटे-छोटे टुकड़े होकर बिखरने में समय ही कितना लगेगा? इसीलिए तो यह नियम बनाया गया कि राजगद्दी का बँटवारा नहीं होगा।

12. यही कारण था कि दुर्योधन राज्य के बँटवारे को बिल्कुल तैयार नहीं हुआ किन्तु निर्णय लेने को सारी शक्तियाँ उसके पास नहीं थीं। अतः अपने पिता की कमजोर स्थिति के कारण मजबूरी में उसने बँटवारा स्वीकार किया।

इसलिए बाद में यदि दुर्योधन अपने साथ व राज्य के लिए हुए अन्याय को समाप्त कर हस्तिनापुर राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए पाँडवों को नष्ट करने में जुट गया तो उसमें कुछ भी अनुचित नहीं था। एक वीर योद्धा का यही कर्त्तव्य था क्योंकि इतिहास गवाह है कि कमजोर छोटे राज्य कभी भी बाहरी शत्रुओं से अपनी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते और नष्ट हो जाते हैं।

राजनीति में साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति को उचित ही नहीं आवश्यक भी इसीलिए माना गया है। राजनीति का यह क्रूर सत्य है कि आप शत्रुओं को नष्ट कर दे या खुद नष्ट होने को तैयार रहें। राज्य का बँटवारा यदि समस्या का हल होता तो श्रीराम को वनवास न देकर भरत व राम में राज्य का बँटवारा करके समस्या का समाधान निकाला गया होता।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दुर्योधन ने राजगद्दी पर अपनी

माँग रखकर कोई गलत काम नहीं किया।

अन्धे का पुत्र अन्धा

दूसरा प्रसंग आता है कि द्रोपदी ने अपने घर आये मेहमान राजकुमार दुर्योधन का अपमान अंधे का पुत्र अंधा कहकर किया। धृतराष्ट्र तो द्रोपदी के श्वसुर के भी बड़े भाई थे। अतः द्रोपदी के लिए पिता समान थे। अतः द्रोपदी द्वारा किया यह अपमान एक श्वसुर का अपमान था, एक राजा का अपमान था। एक अतिथि का भी अपमान था। इससे यह पता चलता है कि द्रोपदी कितनी वाचाल व निर्लज्ज हो चुकी थी। ऐसी निर्लज्जता, वाचालता अनेक पुरुषों के सम्पर्क में रहने वाली नारी के लिए स्वाभाविक है।

अतः एक स्वाभिमानी, वीर, योद्धा राजकुमार के लिए यह बिल्कुल आवश्यक व अनिवार्य कर्त्तव्य था कि ऐसी स्त्री को दण्ड देता।

पांडवों को अपमानित व लज्जित करना इसलिए जरूरी था कि वे उसके राज्य पर अधिकार मांग रहे थे जबकि युधिष्ठिर तो पक्का जुआरी था। इतना पक्का जुआरी इतिहास में दूसरा कोई नहीं हुआ कि अपने राजपाट, भाइयों और पत्नी तक को दाँव पर लगा दें। शेष पांडवों को इसलिए लज्जित करना जरूरी था कि वे ऐसे निकम्मे व दुर्व्यसनी भाई के गलत कामों का विरोध करने की बजाय उसके मोह पाश में बँधे रहे। युधिष्ठिर तो कोई बड़ा योद्धा भी नहीं था। ऐसे अयोग्य लोगों के हाथ में दुर्योधन राज्य की बागडोर कैसे जाने देता?

उज्ज्वल पक्ष

इसके अतिरिक्त दुर्योधन के चरित्र के कई उज्ज्वल पक्ष भी हैं। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ था। राजनीति के सभी दाँव पेंचों साम, दाम, दण्ड, भेद आदि का प्रयोग उसने अपने शत्रुओं को नष्ट करने में किया। परिवार व सामान्य समाज के लिए उचित नैतिक मानदण्डों का पालन करना एक राजा के लिए न सम्भव होता है न आदर्श। वर्तमान समय के युद्धों की कार्यप्रणाली देख ले। युद्ध में धोखा बहुत बड़ा हथियार होता है। मंत्रियों, शासनाध्यक्षों को गोपनीयता की शपथ भी इसलिए दिलाई जाती है। सदा

सत्य बोलना राजा के लिए आवश्यक नहीं होता।

लाक्षागृह में पांडवों को जलाकर मार डालने का प्रयास, जुए में राज्य छीन लेना, कर्ण जैसे वीर को अपना मित्र बना लेना, भीष्म व गुरु द्रोण जिनकी सत्यनिष्ठा सदैव संदिग्ध रही, को भी अन्त तक अपने साथ बनाए रखना व लड़ने के लिए तैयार कर लेना, दुर्योधन की विलक्षण प्रतिभा, योग्यता का ही प्रमाण थी। यदि युद्ध में दुर्योधन की जीत हो जाती तो उसे ही धीरोदात्त नायक सिद्ध किया जाता।

चीरहरण

दुर्योधन पर दूसरा आरोप यह लगाया जाता है कि उसने द्रोपदी का चीरहरण करवाया। इस प्रसंग में भी मूल रूप से द्रोपदी व पाँडव ही दोषी थे। दुर्योधन ने जो कुछ किया वह तो पाँडवों व द्रोपदी द्वारा किये गये घोर अनैतिक, अश्लील व घृणित कार्यों का दंड मात्र था ताकि समाज के सामने एक उदाहरण हो व अन्य लोग उनकी नकल न करने लगें व समाज में उच्च नैतिक परम्पराओं का ही विकास हो। जरा निम्न विवेचन पर ध्यान दें –

पाँडवों का सबसे बड़ा, अश्लील व घृणित अपराध तो यही था कि पाँचों भाइयों ने अकेली द्रोपदी को अपनी पत्नी बनाया। उन दिनों न कोई ऐसी परम्परा थी, ना ही कोई उदाहरण ही मौजूद था। आदर्श तो यह था कि –

अनुज वधू, भगिनी, सुत नारी।
इन्हहि विलोकत पातक भारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकई जोई।
ता को बधे कछु पाप न होई।।

बड़े भाई की पत्नी को माँ के समान सम्मान प्राप्त था। लक्ष्मण का उदाहरण सबके सामने था, किन्तु यहाँ सारे सिद्धान्तों को ताक पर रखकर नारीत्व का घोर अपमान किया गया था। उसमें जहाँ युधिष्ठर, भीम, नकुल, सहदेव की चरित्रहीनता का पता चलता है, वही कुन्ती व द्रोपदी की भी मानसिकता का पता चलता है कि एक ने इसमें पूरा सहयोग दिया व दूसरी ने बिना किसी ना-नुकुर, बिना किसी प्रतिरोध के इसे स्वीकार कर लिया। कुन्ती अपने जीवन में अलग-अलग पुरुषों से सन्तान उत्पन्न कर ही चुकी थी।

द्रोपदी ने भी सीता, सावित्री अनुसुइया आदि आदर्श नारियों का अनुसरण न करके सास के समान एकाधिक पुरुषों से सुख प्राप्त करने को महत्त्व दिया। अब सास-बहू दोनों एक दूसरे को ताना देने लायक न रही।

एक बात और ध्यान देने की है कि द्रोपदी स्वयंवर के समय पांडव अज्ञातवास में थे। अतः उनके वनवास के कुछ ही महीने शेष थे। कुछ महीनों बाद तो उनके अलग-अलग विवाह हो ही जाते किन्तु युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव की अत्यधिक कामुकता ने ही द्रोपदी को साझे की पत्नी बनाने की व्यवस्था कराई कि वे कुछ महीनों के लिए भी अपने विवाहों की प्रतीक्षा नहीं कर सके।

एक बात और वनवास के समाप्त होने के बाद तो सबको अपने-अपने स्वतंत्र विवाह करके द्रोपदी को केवल अर्जुन के लिए छोड़ देना चाहिए था। यहाँ पर यह भी ध्यान देने की बात है कि बाद में भीम ने हिडिम्बा से व अर्जुन ने सुभद्रा से भी विवाह किये थे किन्तु इन दोनों नारियों ने सबकी साझा पत्नी बनने से साफ इंकार कर दिया होगा। यह तो केवल द्रोपदी ही थी जो बाद में भी पाँचों की पत्नी बनी रही।

अतः यहाँ भी दुर्योधन दोषी नहीं था। यह भी हो सकता है कि कवि-कल्पना से घटना को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया हो।

पाँच गाँव

दुर्योधन के चरित्र पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि जब श्रीकृष्ण संधि के लिए गये तो उन्होंने पाँडवों को केवल पाँच गाँव ही देने का प्रस्ताव रखा। इस पर दुर्योधन ने कहा कि "सुई की नोक के बराबर भूमि भी नहीं दूँगा।" यह एक वीर योद्धा व राजनीति के ज्ञाता राजा की गर्जना थी। कमजोर व्यक्ति तो शत्रुता या युद्ध से डरकर समझौता कर ही लेता।

पाँच गाँव माँगने की बात उतनी सरल नहीं थी जितनी बताई जाती है। ये पाँच गाँव थे – बागपत, पानीपत, सोनीपत, वरणावृत व इन्द्रप्रस्थ। बात इन पाँच गाँवों की नहीं थी, बात थी एक राज्य के अन्दर दूसरा सार्वभौम, प्रभुता-सम्पन्न राज्य माँगने की। अर्थात् राज्य के टुकड़े करने की। यदि पांडव दुर्योधन को राजा मानते हुए अपने लिए जागीरें या सूबेदारी माँगते तो

दुर्योधन को कोई आपत्ति न होती। आखिर दुर्योधन के अन्य भाई भी तो सम्मानपूर्वक उसके राज्य में रह रहे थे। उन्होंने तो कोई स्वतन्त्र राज्य नहीं माँगा।

यदि पाँडवों की माँग को उचित माना जाये तो आज कश्मीर, पंजाब, नागालैंड आदि को अलग कर देने में क्या गलत होगा? तब तो यह एक बहुत ही घातक नीति होगी व एक-एक करके सब प्रांत अलग हो जाएँगे। भारत राष्ट्र का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

दुर्योधन इसी सिद्धांत पर अडिग था व हस्तिनापुर राज्य की प्रभुसत्ता व अखण्डता के लिये उसने अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया तथा अपने राज्य की रक्षा करते हुए ही अन्त में वीर गति को प्राप्त हुआ। यही नहीं दुर्योधन के सभी भाई भी भाई के पक्ष में लड़ते हुए मारे गये पर पक्ष द्रोह नहीं किया। अपने भाइयों को दुर्योधन व उसके भाई उसे कितना प्यार करते होंगे। यह भ्रातृप्रेम का दुर्लभ उदाहरण है। सुग्रीव व विभीषण की तरह कोई अलग नहीं हुआ। यदि पाँडवों में से एक या दो भाई मारे जाते तो उनकी एकता कितनी देर ठहरती, यह विचारणीय बात है।

अभिमन्यु-वध

दुर्योधन पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि उसने युद्ध के नियमों के विरुद्ध कई योद्धाओं से एक साथ आक्रमण कराकर अभिमन्यु को मरवा डाला।

इससे पहले पाँडव स्वयं नियम तोड़कर निहत्थे भीष्म को मृत्यु शैय्या पर पहुँचा चुके थे। भीष्म के घायल होने के प्रसंग में दो बातें तो बिल्कुल सिद्ध हैं। एक तो भीष्म का अपने राजा के प्रति विश्वासघात, दूसरे अर्जुन द्वारा स्वयं ही मान्य किये गये नियमों का घोर उल्लंघन। क्योंकि निहत्थे पर वार न करना दोनों पक्षों द्वारा पहले ही स्वीकार किया गया था। ज्यादा से ज्यादा भीष्म को बन्दी बनाया जा सकता था किन्तु निहत्थे भीष्म को मरणासन्न स्थिति में पहुँचा देना पाँडवों की घोर क्रूरता का प्रमाण था।

तीसरी बात यह कि यद्यपि अभिमन्यु बहुत बड़ा योद्धा व वीर था किन्तु उसे भीष्म से बड़ा योद्धा तो स्वयं महाभारत में भी नहीं बताया गया

है। अतः जब पहले पाँडवों द्वारा धोखे से भीष्म को मरणासन्न हालत में पहुँचा दिया तो बाद में यदि दुर्योधन ने वैसा ही किया तो क्या गलत किया? यह तो “शठे शाठ्यम् समाचरेत्” की नीति का पालन था।

एक कुशल सेनापति

दुर्योधन एक कुशल सेनापति था। वह जीत की पूरी संभावना के बाद ही युद्ध के मैदान में उतरा था। उसके पास भीष्म पितामह, गुरु द्रोण तथा कर्ण के रूप में तीन ऐसे वीर योद्धा थे जो स्वाभाविक रूप से पाँडवों पर भारी पड़ते थे। उसके पास सेना भी पाँडवों से बड़ी थी। विजय की निश्चित सम्भावना के साथ ही वह युद्ध के मैदान में उतरा था अन्यथा शायद वह और कोई विकल्प तलाशता। उसकी हार के मुख्य कारण भीष्म, द्रोण, कर्ण व विदुर के विश्वासघात थे जिसका विश्लेषण हम आगे करेंगे।

श्रीकृष्ण से मदद की कोशिश

दुर्योधन पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि वह अभिमानी व अशिष्ट था। क्योंकि जब वह श्रीकृष्ण से मदद माँगने जाता है तो वह श्रीकृष्ण के सिरहाने खड़ा होता है व उसी समय पहुँचने वाला अर्जुन श्रीकृष्ण के पैरों की ओर खड़ा हुआ। आँख खुलने पर श्रीकृष्ण की नजर पहले अर्जुन पर पड़ती है। अतः पहले अर्जुन को माँगने को कहा गया। यह कथा केवल कवि कल्पना मात्र लगती है व दुर्योधन को अशिष्ट सिद्ध करने के लिए लिखी गई है। जरा गौर करें –

1. क्या यह अजीब नहीं लगता कि दोनों पक्ष एक साथ बिल्कुल ही एक ही समय पर पहुँचे।
2. श्रीकृष्ण एक राजा थे। उनके शयन कक्ष तक उनकी पूर्व अनुमति के बिना किसी का भी पहुँचना सम्भव नहीं लगता।
3. श्रीकृष्ण के शयन कक्ष में इतने सवेरे पहुँचना जबकि वे सोये हुए हैं, बिना पूर्व अनुमति के उनकी सुरक्षा-व्यवस्था पर प्रश्न-चिह्न है जो सम्भव नहीं लगता। अतः यह घटना भी सत्य प्रतीत नहीं होती।

2.2 भीष्म

भीष्म ने दुर्योधन के उचित तर्कों को जानकर भी कभी पाँडवों से यह नहीं कहा कि राजगद्दी पर दुर्योधन की माँग उचित है। बल्कि दोनों के भले बनने की कोशिश की। ऐसे व्यक्ति अन्त में दोनों के बुरे हो जाते हैं। अन्त में हुआ भी यही। वे पाँडवों के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुए व दुर्योधन के प्रति विश्वासघात करके उसकी हार का कारण बनें।

यह तो अत्यन्त मूर्खतापूर्ण बात है कि युद्ध में सेनापति केवल इसलिए हथियार डाल दे कि सामने कोई किन्नर आ गया। भगवान राम ने तो ताड़का को मारने में कोई संकोच नहीं किया था। जब दुर्योधन ने भीष्म को सेनापति बनाया था तो क्या भीष्म ने यह शर्त रखी थी कि हीजड़े के सामने आने पर वे हथियार रख देंगे। उत्तर है — नहीं। भीष्म ने यह भी नहीं सोचा कि तू जिस राजा का सेनापति है, उसका क्या हाल होगा। जबकि दुर्योधन तो युद्ध में सबसे अधिक भीष्म के ही भरोसे उतरा था। इस प्रकार भीष्म ने व्यक्तिगत मान-अपमान के विचार को अपने राज्य व राजा के प्रति कर्त्तव्य से अधिक महत्त्वपूर्ण समझा। इसके अलावा काशीराज की पुत्रियों का अपहरण व शायद पहले गाँधारी का भी अपहरण उनके चरित्र के अन्य कमजोर पक्ष हैं।

2.3 गुरु द्रोण

पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर अर्जुन ने तो जयद्रथ को मारकर पुत्र की मृत्यु का बदला लेने की प्रतिज्ञा की किन्तु दूसरी ओर गुरु द्रोण हथियार रखकर बैठ जाते हैं व दुर्योधन की हार का रास्ता खोल देते हैं। क्या दुर्योधन ने कभी यह सोचा होगा कि दूसरों के पुत्रों को लगातार मारने वाला व्यक्ति मानसिक रूप से इतना कमजोर होगा कि अपने पुत्र की मृत्यु पर जड़वत् हो जायेगा।

अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धर्नुधारी बनाने के मोह में वे एकलव्य से अँगूठा माँग बैठते हैं। यहाँ गुरु द्रोण का चरित्र तो कलंकित हुआ ही, अर्जुन का भी चरित्र कलंकित ही हुआ, क्योंकि अपनी अक्षमता पर दुःखी होने के बजाय

उसने गुरु द्रोण को उलाहना ही दिया। अर्जुन ने उन्हें इतना उत्तेजित किया होगा कि द्रोण आवेश में आकर विवेक खो बैठे व अँगूठा माँग बैठे। मेरा विचार है कि गुरु अपने इस कृत्य पर जीवन भर पश्चात्ताप करते रहे होंगे। किन्तु महाभारतकार ने उनके पश्चात्ताप को न दिखाकर उनके व्यक्तित्व को कितना छोटा कर दिया।

अन्त में पाँडवों की क्रूरता देखिये कि गुरु द्रोण को बंदी न बनाकर क्रूरतापूर्वक उनकी हत्या कर दी।

2.4 विदुर

विदुर को राजनीति का बड़ा विद्वान बताया गया है और 'विदुर नीति' की बहुत प्रशंसा की गई है। किन्तु विदुर 'विश्वासघाती व्यक्ति' का निकृष्टतम उदाहरण बने रहें। उम्र-भर वेतन तो दुर्योधन से पाते रहे किन्तु सदैव उसके शत्रुओं से मिले रहे। दुर्योधन के गुप्त भेद पाँडवों को देते रहे। ऐसा मंत्री जिसकी सत्यनिष्ठा शत्रुओं के प्रति हो, सदैव अपने राजा के विनाश का कारण होता है। दुर्योधन के साथ यही हुआ। वास्तव में दुर्योधन को विदुर को महामंत्री नहीं बनाना चाहिए था। अथवा बाद में पता चलने पर उसे मृत्यु दण्ड देना चाहिए था। क्योंकि उसके द्वारा भेद बताने पर ही पाँडव लाक्षागृह से बच निकले अन्यथा महाभारत की नौबत ही नहीं आती। अन्य अवसरों पर भी विदुर ऐसे ही परामर्श देते रहे जिनसे पाँडवों को लाभ हुआ व दुर्योधन को हानि।

राजनीति के वास्तविक पंडित तो चाणक्य ही हुए हैं जिन्होंने कहा कि मंत्रियों व सेनापतियों की सबसे महत्त्वपूर्ण योग्यता यही होती है कि वे अपने राजा के प्रति पूर्ण विश्वासपात्र हों। अन्य योग्यताएँ बाद में देखी जानी चाहिए।

2.5 कर्ण

कर्ण का चरित्र वास्तव में सबसे महान् है। वह कुछ भी सुविधाएँ न होते हुए भी अर्जुन के समकक्ष धनुर्धारी बना। युद्ध में केवल कर्ण ही ऐसा योद्धा था जिस पर दुर्योधन को पूरा भरोसा रहा। कर्ण लड़ा भी वीरता के

साथ किन्तु अन्त में कृष्ण व कुन्ती की चालों में फंसकर अपनी मृत्यु व दुर्योधन की हार का कारण बन ही गया। जिस बच्चे को पैदा होते ही मरने के लिए नदी में बहा दिया था व जिसे बाद में पहचान लेने पर भी (कवच व कुंडलों के कारण) कभी कर्ण को नहीं बताया व उम्र-भर सूतपुत्र कहलाकर अपमान भरा जीवन जीने को बाध्य कर दिया। उसी का भावनात्मक शोषण करने कुन्ती बड़ी निर्लज्जतापूर्वक कर्ण के पास चली गई।

कर्ण के सब कुछ जानकर भी पाँडव पक्ष में मिलने या युद्ध से हटने से इंकार करने पर भी कुन्ती कर्ण की भावनाओं को उत्तेजित करती ही रही व अन्त में चार पाँडवों की जीवन रक्षा का वचन ले ही लेती है। यहीं पर कर्ण का होना न होना दुर्योधन के लिए बराबर हो गया। अन्तिम युद्ध में कर्ण चाहे अर्जुन के हाथों मारा ही क्यों न जाता। वह अवसर मिलते ही यदि शेष चारों पाँडवों को मार देता तो महाभारत की कथा का स्वरूप ही बदल जाता।

इस प्रकार कर्ण की दृढ़ इच्छा-शक्ति का कमजोर हो जाना व चार पाँडवों को न मारने का आश्वासन देना, दुर्योधन के प्रति विश्वासघात ही हुआ। कर्ण ने लज्जा और संकोच के कारण यह भेद दुर्योधन को नहीं बताया।

कर्ण एक दानवीर था। किसी भी याचक को खाली हाथ नहीं लौटाता था। जरूरतमन्दों की सहायता के लिए दान एक उत्तम कार्य हो सकता है किन्तु यदि याचक दुर्भावना से षडयंत्रपूर्वक दान माँगे तो उसे दान देना मूर्खता ही कही जाएगी। इन्द्र के छल में फँसना वह भी अपनी भावुकता के कारण उसकी मृत्यु का कारण बना। इससे यह सबक मिलता है कि दान केवल मजबूर, जरूरतमंद लोगों को ही देना चाहिए। कुपात्र (इन्द्र) को दान देना पाप ही है।

2.6 शकुनि

महाभारत में शकुनि का भी घोर चरित्रहनन किया गया, जबकि वास्तव में केवल शकुनि ही पूरे महाभारत में ऐसा आदर्श पात्र है, जो जीवन-भर अपने बहनोई तथा भानजे दुर्योधन के प्रति पूर्ण विश्वासपात्र रहा। वह सदा

अपने बहनाई व भानजे की उन्नति के उपायों में लगा रहा। कभी भी भीष्म, द्रोण, विदुर व कर्ण की भाँति अपने राजा से उसने विश्वासघात नहीं किया।

वह जीवन-भर दुर्योधन के शत्रुओं के विनाश की योजनाएँ बनाता रहा व उनमें प्रायः सफल भी हुआ। यदि भीष्म व विदुर ने विश्वासघात करके पांडवों की सहायता न की होती तो वह अपनी योजनाओं में अवश्य ही सफल हो जाता।

शकुनि राजभक्ति, विश्वासपात्रता का एकमात्र उदाहरण बना रहा। यदि युद्ध कौरव जीत गये होते तो शकुनि को महानायक की तरह चित्रित किया जाता। पूरा इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है।

महाभारत में एक ओर तो श्रीकृष्ण हैं, जो अपने बुद्धि-चातुर्य व पूर्ण विश्वासपात्रता के साथ पांडवों की मदद करते रहे, दूसरी ओर शकुनि है जो कौरवों के शत्रुओं का विनाश करने के लिए पूरे बुद्धि-चातुर्य से लगा रहा। इसका एक अन्य उदाहरण आचार्य चाणक्य व राजा नंद के महामंत्री राक्षस का है। ये दोनों उम्र-भर एक-दूसरे के पक्ष का नाश करने में लगे रहे। किन्तु इतिहास में आज दोनों उच्च आदर के पात्र माने जाते हैं। मेरे विचार से शकुनि को महामंत्री राक्षस जैसा सम्मान मिलना चाहिए।

2.7 श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध के वास्तविक महानायक सिद्ध होते हैं। जब हम चाणक्य का जीवन-चरित्र पढ़ते हैं तो लगता है कि जैसे श्रीकृष्ण की ही आत्मा का पुनर्जन्म हुआ हो।

पहले हम यदि यह सोचें कि श्री कृष्ण ने आखिर पाँडवों का साथ ही क्यों दिया? इसका सीधा सा उत्तर है कि पाँडव उनकी बुआ कुन्ती के पुत्र थे। इस नाते स्वाभाविक रूप से किशोर उम्र से ही आपस में घनिष्ठ मित्र थे। यहाँ पर पाँडवों का धार्मिक होना कौरवों का अधर्मी होना तो कवि के द्वारा विजेताओं को महिमामंडित करने के अलावा कुछ नहीं है।

कृष्ण और पाँडवों की घनिष्ठता व मित्रता का प्रमाण द्रोपदी स्वयंवर में भी मिलता है। कृष्ण भी वहाँ गये थे व मछली को बेधने में पूर्ण सक्षम

होते हुए भी पाँडवों की उपस्थिति को समझकर अपने आपको पीछे कर लिया वरना द्रोपदी, श्रीकृष्ण की पत्नी भी हो सकती थी।

जीवन-भर तो श्रीकृष्ण पाँडवों को मदद करते ही रहे। सुभद्रा का विवाह अर्जुन से कराकर सम्बन्धों को और मजबूत कर दिया। किन्तु हम यहाँ सीधे महाभारत युद्ध पर ही आते हैं। सबसे पहले प्रसंग आता है कि श्रीकृष्ण ने अपनी कुछ सेना दुर्योधन को मदद के लिए दे दी। इसके पीछे यद्यपि कोई प्रमाण तो नहीं मिलता किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस सैनिक टुकड़ी में श्रीकृष्ण के अनेक जासूस भी हो सकते हैं। दूसरी ओर आवश्यकता पड़ने पर दुर्योधन को धोखा देने के लिये इस सैनिक टुकड़ी का प्रयोग करना सम्भव था। आखिर वह थी तो श्रीकृष्ण की सेना ही। उनका आदेश उस टुकड़ी को मानना ही पड़ता।

दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग 'गीता' के उपदेश का है। युद्ध भूमि में अर्जुन अपने ही परिवार जनों को तथा दुर्योधन की विशाल सेना व भीष्म, द्रोण व कर्ण की शक्ति को देखकर मानसिक रूप से लड़ने का साहस खो बैठता है तो ये श्रीकृष्ण ही हैं जिन्होंने उसे मनोवैज्ञानिक रूप से पुनः युद्ध के लिए तैयार कर दिया। इसीलिये कुछ लोगों का विचार है कि श्रीकृष्ण न होते तो युद्ध ही न होता।

कर्ण के पास एक अमोघ शक्ति का होना बताया जाता था उसे श्रीकृष्ण ने बड़ी चतुराई से घटोत्कच पर प्रयोग कराकर अर्जुन को सुरक्षित कर दिया।

यह भी श्रीकृष्ण ही थे जिन्होंने कौरव पक्ष के भीष्म व द्रोण को पाँडवों के प्रति सदैव नम्र बनाये रखा। उनके प्रति पाँडवों के पाखंडपूर्ण सम्मानजनक व्यवहार की पोल तो तब खुलती है जब अर्जुन दोनों महारथियों को निहत्थे होने पर बंदी बनाने की बजाय क्रूरतापूर्वक उनको मार डालते हें। श्रीकृष्ण ने जरा भी अर्जुन को नहीं रोका।

जयद्रथ को मारने में भी श्रीकृष्ण का छल ही काम आया। निहत्थे कर्ण को तुरन्त मार डालने के लिए भी श्रीकृष्ण ही अर्जुन को प्रेरित करते हैं।

जब दुर्योधन अपनी माँ गाँधारी के सामने नग्न रूप में उपस्थित होने जा रहा था ताकि उसका शरीर वज्र के समान कठोर हो जाये तब श्रीकृष्ण

का छल ही था जिसने उसे फूलों से अपने अंगों को ढकने की सलाह दी। वैसे यह भीम को नियम भंग के दोष से बचाने को लिखी गई काल्पनिक कथा लगती है। ज्यादा सही बात यह प्रतीत होती है कि जब भीमसैन उसे हरा नहीं सके तो श्रीकृष्ण की ही प्रेरणा पर जाँघ पर वार करके मार दिया।

जरासंध की विशाल सेना से मथुरा के विध्वंस को बचाने के लिए श्रीकृष्ण, बलराम सहित गुजरात पलायन कर जाते हैं। वे इस बात की चिन्ता नहीं करते कि लोग उन्हें 'रणछोड़जी' कहकर चिढ़ाएँगे।

कुल मिलाकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि –

1. युद्ध शक्ति के बल पर ही जीते जाते हैं। शक्ति बाहुबल, शस्त्र बल, धन बल व बुद्धि बल की होती है। उनमें भी बुद्धि बल सबसे महत्त्वपूर्ण होता है।
2. बिना उपरोक्त शक्तियों के युद्ध केवल सत्य, न्याय, नैतिकता, ईश्वर भक्ति, ईमानदारी सद्गुणों के आधार पर नहीं जीते जा सकते।
3. युद्ध तो होता ही तब है जब सारे न्यायपूर्ण व नैतिकता के रास्ते समाप्त हो चुके होते हैं।
4. कोरी भावुकता के स्थान पर धोखा, छल आदि युद्ध के अनिवार्य तत्त्व हैं। झूठा प्रचार भी इसी में आता है। इस क्रूर सत्य को स्वीकार करना ही चाहिए।
5. इतिहास विजेताओं की महिमा मंडन के लिए ही लिखा जाता है। कुछ उदाहरण –

1. अलाउद्दीन जब चित्तौड़ के किले में गया तो राजपूतों ने धोखा नहीं दिया तो विनाश को प्राप्त हुए व अलाउद्दीन ने धोखा दिया तो विजय प्राप्त की।
2. अंग्रेजों ने छल से सिराजुद्दौला के सेनापति मीरजाफर को अपनी ओर मिलाया व विजय प्राप्त की।
3. सामान्य नैतिक नियम देखे जाये महमूद गजनवी एक अत्याचारी लुटेरा था जबकि भारतीय राजाओं की कोई गलती नहीं थी। शक्ति के बल पर वह सदा जीता। भारतीय राजा सदा हारे। भगवान भी सज्जन

राजाओं की मदद करने कभी नहीं आया।

4. 'सत्यमेव जयते' उपनिषद् की घोषणा है किन्तु राष्ट्र रक्षा अथवा युद्ध में यह 'शक्तिमेव जयते' होना चाहिए अथवा यह व्याख्या होनी चाहिए कि युद्ध में 'शक्ति' (सब प्रकार की) ही 'सत्य' होती है।
5. महाराणा प्रताप वीर शिरोमणि व सारे नैतिक गुणों से भरपूर होते हुए भी हल्दीघाटी का युद्ध नहीं जीत सके क्योंकि 'सैनिक शक्ति' कम थी। राम भी सारा नैतिक बल होते हुए भी रावण को परास्त नहीं कर सकते थे। यदि उनके पास अबोध बाणों की शक्ति न होती।
6. कथा आती है कि जब अंगुलिमाल भगवान बुद्ध पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ने लगा तो उन्होंने किसी अलौकिक शक्ति से उसको अपने स्थान से आगे बढ़ने से रोक दिया। यहाँ भी अंगुलिमान अन्त में 'शक्ति' के आगे ही विवश व प्रभावित हुआ।

अतः हमें स्वयं को, अपने समाज को व राष्ट्र को शक्तिशाली बनाना चाहिए। श्रीकृष्ण ने यही हमें करके दिखाया। अतः वे महानायक थे।

2.8 धृतराष्ट्र

दुर्भाग्य से धृतराष्ट्र जन्म से ही अंधे थे या हो सकता है कि बाद में किसी बीमारी के कारण वे दृष्टि खो बैठे हों। क्योंकि उनके अंधे होने का जो कारण महाभारत में बताया गया है वह बिल्कुल भी तर्कसम्मत नहीं है। सोचकर देखें कि क्या कोई बच्चा मात्र इस कारण अंधा पैदा हो जायगा कि मिलन के समय स्त्री ने आँखें मींच ली हों। हाँ, यह जरूर सिद्ध होता हैं कि दोनों रानियों के साथ उनकी इच्छा व सहमति के बिना ही सम्बन्ध बनाये गये थे, जो आजकल के दृष्टिकोण से बलात्कार की परिभाषा में ही आएँगे।

महाभारतकार बार-बार यह कहता है कि धृतराष्ट्र पुत्र-मोह में अंधे हो गये थे। एक प्रकार से मोहान्ध के वह प्रतीक ही बना दिये गये। यह भी उन्हें जानबूझकर खलनायक सिद्ध करने का प्रयत्न ही है। सही बात यह है कि पुत्र-मोह सभी को होता है। मनुष्य ही नहीं सभी जीव-जन्तु भी अपनी

सन्तान को दूसरे की सन्तान से अधिक प्रेम करते हैं। यह एक स्वाभाविक भावना है जो प्रकृति की देन है। यदि यह भावना न हो तो माता-पिता अपनी संतान के पालन-पोषण के लिए घोर कष्ट भी खुशी-खुशी न उठाये। अनेक अवसर ऐसे भी देखने को मिलते हैं जहाँ माता-पिता संकट में पड़ने पर सन्तान की रक्षा के लिये अपने जीवन का बलिदान भी कर देते हैं। मोह के कुछ उदाहरण देखिये। अर्जुन प्रतिदिन अनेक सैनिकों का वध युद्ध में करते थे तब अर्जुन को यह विचार नहीं आया कि वे भी तो किसी के पुत्र होंगे। किन्तु अपने पुत्र अभिमन्यु के मरने पर इतने दुःखी होते हैं कि आपा खो बैठते हैं और जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा कर बैठते हैं।

दूसरा उदाहरण गुरु द्रोण का है। उन्हें दूसरों के पुत्रों को मारने पर कोई दुःख नहीं होता था किन्तु अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार (झूठा ही) पाकर हथियार छोड़ बैठ जाते हैं व खुद भी मरते हैं और उस राजा की हार व विनाश का रास्ता तैयार कर देते हैं जिसने उन्हें सेनापति बनाया था।

अर्जुन व द्रोण का पुत्र-मोह तो प्रशंसनीय व धृतराष्ट्र का पुत्र-मोह निन्दनीय बताया गया है। यदि पांडु 'भरत' का उदाहरण सामने रखकर राजकार्य बड़े भाई धृतराष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में करते रहते तो स्वाभाविक रूप से दुर्योधन ही युवराज बन जाता व महाभारत की नौबत ही न आती। इस प्रकार पांडु को राज्य का लालच तो प्रशंसनीय हो गया किन्तु धृतराष्ट्र का लालच निन्दनीय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत में धृतराष्ट्र के चरित्र चित्रण में उनके साथ घोर अन्याय किया गया है।

2.9 युद्ध का परिणाम व कारण

महाभारतकार यह घोषणा करते नहीं थकते कि पांडवों की जीत इसलिए हुई कि वे धर्म का आचरण कर रहे थे। कौरवों की पराजय इसलिए हुई कि दुर्योधन अधर्म व अनीति पर चल रहा था। किन्तु यह बात विजेताओं को प्रशंसा के लिए रचा गया पाखंड मात्र है। सच्चाइयों को बिल्कुल उलट देने का षडयंत्र मात्र है। हार के कारण मुख्य रूप से निम्न प्रकार हैं –

1. एक ओर तो यह नियम बनाया कि कोई भी निहत्थे व्यक्ति पर वार नहीं करेगा। दुर्योधन ने नियम का पालन किया इसलिए हारा किन्तु पांडवों ने निहत्थे भीष्म, द्रोण व कर्ण को मारा। सोचें कि अधर्मी कौन था?
2. गदा युद्ध में कोई कमर के नीचे वार नहीं करेगा, यह नियम था। दुर्योधन ने नियम का पालन किया व हारा तथा भीम ने नियम को तोड़ा व जीत गया।
3. बड़ों का आदर करो, उन्हें सम्मान दो। दुर्योधन ने सम्मान देकर भीष्म, द्रोण व कर्ण को सेनापति बनाया तथा विदुर को मन्त्री बनाया किन्तु इन लोगों के विश्वासघात के कारण दुर्योधन हार गया। दूसरी ओर पांडवों ने अपने बड़ों भीष्म, द्रोण व कर्ण की धोखे से हत्या की व जीत गये। मृत्यु के समय सभी निहत्थे थे।
4. श्रीकृष्ण का दोहरापन देखिये। एक को अपनी सेना दे दी व दूसरे के पक्ष में खुद युद्ध में खड़े हो गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण के दोनों हाथों में लड्डू थे। यदि दुर्योधन जीत जाता तो सैन्य सहायता के लिए श्रीकृष्ण का आभारी रहता। एक शंका और भी दिमाग में आती है कि श्रीकृष्ण ने कितने गुप्तचर सैनिकों के रूप में भेजे होंगे तथा श्रीकृष्ण की सेना ने अपने राजा के विरुद्ध कभी भी पूरी वीरता से युद्ध नहीं किया होगा।

वैसे भी इस प्रकार का कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। अतः यह कथा ही कपोल कल्पित लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं 'धोखा' युद्ध का धर्म है। छल, कपट महत्त्वपूर्ण हथियार होते हैं। इस क्रूर सत्य को जिसने समझा वह जीता, जो नहीं समझ पाया वह हारा। इतिहास के सारे युद्ध इन प्रमाणों से भरे पड़े हैं।

अतः हम देखते हैं कि वीर सुयोधन एक धीरोदात्त नायक था जिसे इतिहासकारों ने खलनायक बनाया है।



अयोध्या समस्या और उसका हल

इतिहास

सन् 1556 ई. में बाबर ने इब्राहीम लोदी को पानीपत के युद्ध में हराकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। बाद में खानवा में राणा सांगा को हराकर उत्तर पश्चिम भारत पर अपना प्रभाव जमाया। उसका सेनापति मीर बाकी एक सेना लेकर अयोध्या आया व उस पर भी अधिकार कर लिया।

उन दिनों आसपास के हिन्दू राजा, प्रजा या बड़े जमींदार मिलकर मुसलमानों की सत्ता को चुनौती देने का साहस न करें, इसके लिए भयानक आतंक फैलाया जाता था। इसका एक तरीका यह था कि राजाओं व बड़े जमींदारों के परिवारों के पुरुषों को कत्ल करके उनकी रानियों व कन्याओं को जबरदस्ती पकड़कर मुसलमानों के कब्जे में देना व सामान्य हिन्दू प्रजा की स्त्रियों को भी सेना के भोग-विलास के लिए भारी संख्या में पकड़ा जाता था।

इसका दूसरा तरीका यह था कि हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़कर उसी जगह मस्जिद बना दी जाती थी। मस्जिद बनाने में प्रायः मन्दिरों का मलबा भी प्रयोग कर लिया जाता था।

इससे एक ओर तो हिन्दुओं का मानमर्दन होता था व उनमें भय व्याप्त हो जाता था। दूसरी ओर आक्रमणकारी इस्लाम की सेवा कहकर 'गाजी' बनने का सम्मान प्राप्त करते थे। बाबर ने भी हिन्दू प्रजा पर भयानक जुल्म किये थे, जिन्हें देखकर 'नानक' जैसे संत ने भी ईश्वर से शिकायत की थी कि तेरे होते ऐसे भयानक जुल्म क्यों हो रहे हैं?

इसी नीति के कारण मीर बाकी ने रामजन्म स्थान पर बने मन्दिर को

तोड़कर मस्जिद बनवा दी थी जिसे पहले 'मस्जिद जन्म स्थान' कहा जाता था। बाद में इसे बाबरी मस्जिद कहा जाने लगा।

भारत में ऐसे हजारों उदाहरण मौजूद हैं कि जहाँ मन्दिर को तोड़कर मस्जिद बनाई गई। जैसे काशी में 'ज्ञानव्यापी मस्जिद', मथुरा में कृष्ण जन्म स्थान पर ईदगाह बना है। दिल्ली में कुतुबमीनार के बराबर में 'मस्जिद कुव्वतुल इस्लाम' (इस्लाम की ताकत) वहाँ के 27 हिन्दू व जैन मन्दिरों को तोड़कर बनाई गई थी। इसका बोर्ड अब भी वहाँ पर लगा है। जो लोग अयोध्या में किसी मन्दिर के होने के प्रमाण माँगते हैं, उनको यह सोचना चाहिए जब पूरे भारत में भगवान राम के मन्दिर आज भी मौजूद हैं तो क्या उनकी अयोध्या में उनका मन्दिर नहीं होगा। जौनपुर में अटाला देवी के मन्दिर को तोड़कर अटाला मस्जिद भी ऐसे ही बनी है।

हिन्दुओं ने सदैव इसे अपने अपमान का प्रतीक समझा व जन्म स्थान को मुक्त कराने का प्रयत्न करते रहे। जबसे मस्जिद गिरी है तब से इस विषय पर विद्वान् व जानकार लोगों के बहुत से लेख अखबारों में छपे जिनमें अनेक प्रमाण भी अपने निष्कर्षों के समर्थन में दिये गये थे। सबसे पहले अकबर के समय में लोगों ने जन्म स्थान पर पूजा पाठ की इजाजत माँगी थी। अकबर कुछ उदार था। उसने ही उस स्थान पर हिन्दुओं को पूजा पाठ की इजाजत दी थी। जहाँ आज श्रीराम लला की मूर्ति रखकर उनका पूजा पाठ चल रहा है। दूसरी बात यह है कि अंग्रेजों के समय में भी यह मुकदमा लम्बे समय तक चला जिसमें इस तथ्य को मानने के बाद भी कि मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनाई गई थी, फैसले में यथास्थिति इसलिए बहाल रखी गई क्योंकि मामला पुराना हो चुका था। इसलिए बदलाव सम्भव नहीं। दूसरा कारण जो लिखा नहीं गया, वह था 'बाँटो और राज करो' ही उनकी नीति थी। तब से आज तक मसला विभिन्न अदालतों व सरकारों के विचाराधीन रहा है।

तार्किक विवेचन

मैंने कुछ मुसलमानों बुजुर्गों के सामने निम्न तर्क रखे तो वे पूरी तरह सहमत थे, किन्तु ऐसे मुसलमान न तो धार्मिक नेता है और न राजनैतिक नेता। वे धार्मिक नेताओं जैसी अधार्मिकता व राजनेताओं जैसी छल-कपट

की बातें नहीं सीख पाये थे।

1. आज भारत में जितने भी मुसलमान हैं उनमें से 99 प्रतिशत मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू थे। बाहर से केवल फौज के रूप में कुछ लोग आये जिनकी संख्या एक प्रतिशत ही होगी।

2. हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के चार तरीके थे। पहला तो यह कि मुसलमान आक्रमणकारी अपने साथ औरतों को नहीं लाये थे। अतः उन्होंने हिन्दू औरतों को बड़ी संख्या में पकड़ा और अपनी फौज के लोगों से उनकी शादी करा दी। इस्लाम में शादी से पहले औरत का इस्लाम स्वीकार कराना अनिवार्य है। अतः उन औरतों को मुसलमान बनाया गया। उनके बच्चे भी मुसलमान ही बनें।

   दूसरे तरीके से समाज में उच्च स्थान व सम्मान पाने वाले वर्ण जैसे क्षत्रिय, ब्राह्मण, जाट, गुर्जर आदि को तलवार के बल पर इस्लाम कबूल करने को बाध्य किया। उच्च जातियों का मान मर्दन करने को ऐसा किया गया।

   तीसरे तरीके में उच्च जातियों के सम्पन्न जमींदारों व किसानों पर जजिया कर लगाकर उनकी कमर तोड़ दी जिससे बहुत से लोग मुसलमान बनने को बाध्य हो गये। त्यागी बिरादरी के लोग ज्यादातर ऐसे ही मुसलमान बनें।

   चौथे तरीके में हिन्दू समाज में व्याप्त छुआछूत के कारण मुस्लिम संतों ने कुछ छोटी जातियों को मुसलमान बनाया व कुछ वे लोग मुसलमान बने गये जिन्हें युद्ध के समय छूटकर वापस आने पर हिन्दू समाज ने स्वीकार नहीं किया। आजकल अधिकांश मुसलमान इन कारणों को स्वीकार करने को अपमान के कारण बचते हैं।

3. अब इस बहस से कोई लाभ नहीं कि कोई कैसे मुसलमान बना। मुख्य बात यह है कि भारत में रहने वाले 99 प्रतिशत मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू थे। अतः यह भी सिद्ध है कि श्रीराम भारत में रहने वाले हिन्दू व मुसलमान दोनों के साझे पुरखे थे। बाबर भारत में रहने वाले मुसलमानों में से 99 प्रतिशत का पूर्वज नहीं है।

4. अपने महान् पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रकट करना व उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए उनके स्मारक बनाना व साहित्य लिखना यहाँ के हिन्दू और मुसलमान दोनों का समान कर्त्तव्य है।

   अतः कोई मुसलमान श्रीराम का केवल इसलिए अपमान करे कि वे हिन्दू थे, मुसलमान नहीं थे, उचित नहीं है। उन दिनों तो इस्लाम धर्म धरती पर था ही नहीं। आज यदि कोई व्यक्ति किसी भी कारण से इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले तो क्या यह तथ्य बदल जायेगा कि उसके माता-पिता व अन्य पूर्वज हिन्दू थे। क्या उनका डी.एन.ए. बदल जायेगा? क्या उस व्यक्ति का अपने माता-पिता या पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रकट करने का कर्त्तव्य समाप्त हो जायेगा? श्रीराम ने अपने जीवन में ऐसा कोई काम नहीं किया जिसे मुसलमान अपने विरुद्ध कह सके।

5. मुसलमान भाइयों को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या इस्लाम धर्म दूसरों के धर्म स्थलों को तोड़कर उन पर मस्जिद बनाने की इजाजत देता है? यदि वे यह कहें कि मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनाना उचित है तो वे मस्जिद तोड़कर मन्दिर बनाने को कैसे गलत कह सकते हैं। यदि मुसलमानों को अपने धर्म का प्रचार करने का अधिकार है तो हिन्दुओं और ईसाइयों को क्यों नहीं होना चाहिए।

6. कुछ लोगों ने मुझे बताया कि मस्जिद के निर्माण में गलत ढंग की कमाई का धन नहीं लगाना चाहिए। दिलीप कुमार ने एक मस्जिद के निर्माण के लिए बड़ी रकम देने की पेशकश की थी किन्तु उसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि नाचने-गाने वालों का पैसा मस्जिद बनाने में नहीं लगाया जाना चाहिए। तो क्या बाकी द्वारा मस्जिद के निर्माण में लगा धन अच्छी कमाई का था? उसने वह धन अगणित हत्याएँ करके प्राप्त किया था। क्या लूट की कमाई कोई अच्छी या जायज कमाई होती है? इसी प्रकार मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि पर बना ईदगाह अच्छी कमाई से बना है? दिल्ली की मस्जिद कुव्वतुल इस्लाम व ज्ञानव्यापी मस्जिद अच्छी कमाई से बनी हैं?

   हिन्दू मुस्लिम तनाव के कारण बाबरी मस्जिद में सैकड़ों वर्षों से

नमाज नहीं पढ़ी जा सकी है। मैंने सुना है कि ऐसी इमारत जिसमें लम्बे अरसे तक नमाज नहीं पढ़ी गई हो, मस्जिद कहलाने का हक खो देती है। अतः बाबरी मस्जिद को अब मस्जिद कहना ही उचित नहीं है।

7. अपने महान पूर्वजों की याद में उनके जन्म स्थान पर बने स्मारक को तोड़ना क्या भारत के मुसलमानों के सम्मान को बढ़ाता है? क्या कोई सभ्य धर्म दूसरे के धर्म स्थान को तोड़ने की इजाजत देता है? मीर बाकी यदि भारत में पैदा हुआ कोई मुसलमान होता तो शायद वह भी मन्दिर न तोड़ता। भारत के मुसलमानों का खून का रिश्ता श्रीराम से हो सकता है, मीर बाकी से नहीं। बाबर व मीर बाकी जैसे अत्याचारियों के प्रति कोई भी भारतीय आखिर क्यों सम्मान का भाव रखे?

8. कट्टरपंथी मुसलमानों व उनके वोट बैंक के लालच में अंधे बने राजनेता यह तर्क देते हैं कि पहले यह सिद्ध किया जाये कि ठीक उसी स्थान पर राम का जन्म हुआ था। यह कुतर्क है क्योंकि विश्व का सारा ज्ञात इतिहास मात्र ढाई तीन हजार वर्ष पुराना है। महाभारत की घटना भी गणना करने पर करीब पाँच हजार वर्ष पुरानी सिद्ध होती है। जबकि श्रीराम का समय तो महाभारत से भी हजारों वर्षों पुराना है। इससे पुराना इतिहास तो केवल कथाओं, कहानियों व ज्ञात इतिहास काल में लिखे उससे पुराने समय की घटनाओं के आधार पर हमें ज्ञात होता है।

   मुसलमान भाई जरा इस बात पर गौर करें कि उनकी पवित्र पुस्तक कुरान में आई पूर्व महापुरुषों के जीवन की घटनाओं को क्या भौतिक प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित करना सम्भव है। कतई नहीं। क्योंकि समय के साथ-साथ सभी ठोस भौतिक प्रमाण नष्ट होते चले जाते हैं।

9. पूरे प्रकरण में महत्त्व इस बात का नहीं है कि श्रीराम का जन्म उसी स्थान पर हुआ था या नहीं। सारा झगड़ा इस बात पर है कि वहाँ एक राम मन्दिर बना था जिसे तोड़कर मस्जिद बनाई गई। यह पूरे हिन्दू समाज का अपमान है। अतः इस जगह पर राम मन्दिर बनना

चाहिए। मन्दिर का तोड़ना व मस्जिद का बनाना प्रमाणित है।

जन्म स्थान होने का प्रमाण तो यही है कि मान्यताओं के अनुसार वही जन्म स्थान माना गया तभी तो वहाँ मन्दिर बनाया गया। सारे उपलब्ध साहित्य में अयोध्या को ही श्रीराम की जन्मभूमि बताया गया है। भौतिक प्रमाणों के आधार पर किसी अन्य स्थान को भी जन्म स्थान सिद्ध नहीं किया जा सकता।

11. मुसलमानों को यह भी समझना चाहिए कि मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा भारत में मन्दिर तोड़ने का लम्बा इतिहास है। महमूद गजनवी, कुतुबुद्दीन ऐबक, औरंगजेब ही नहीं अन्यों ने भी अनेक मन्दिर तोड़े फिर मीर बाकी क्यों पीछे रहता। मुसलमान आक्रमणकारी कितने क्रूर होते थे कि तैमूर लंगड़े ने दो लाख हिन्दुओं का लौटते समय कत्ल करा दिया था। पहले इन लोगों से सेना की सेवा का काम लिया गया था। नादिरशाह ने तो दिल्ली में कत्लेआम करा दिया था। चंगेज खाँ तो अपनी क्रूरता के लिए कुख्यात ही है।

12. भारत में ऐसी मस्जिदों की संख्या हजारों में हैं जो कि मन्दिर तोड़कर बनाई गई किन्तु उनके निर्माण के लिए वर्तमान पीढ़ी जिम्मेदार नहीं है। इसीलिए भारत सरकार ने कुछ अपवादों को छोड़कर शेष सभी मस्जिदों के बारे में 1947 की यथास्थिति स्वीकार कर ली व मथुरा, काशी, अयोध्या का मामला अपवादों में रखा था।

हल

उपरोक्त विवेचन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि बाबरी मस्जिद चूँकि अब है ही नहीं। अतः वहाँ भव्य राम मन्दिर बनाने में मुसलमान भी सहयोग करें। साथ ही मुसलमानों के लिए अलग स्थान पर एक मस्जिद बना दी जाए ताकि दोनों समुदायों की भावनाएँ आहत न हों।



मूर्ति पूजा

किसी व्यक्ति की स्मृति को बनाये रखने के तीन तरीके हैं। एक तो यह कि उसके जीवन चरित्र को कथा कहानियों के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता रहे। रामलीला मंचन के द्वारा व रामकथा श्रवण के द्वारा अनपढ़ लोग भी श्रीराम की स्मृति को आज तक बनाये रख सके हैं। जीवन चरित्र कहने व सुनने में पीढ़ियों के अन्तराल में बहुत सी बातें छूट जाती हैं व बहुत सी नई बातें जुड़ जाती हैं। इसी कारण भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में राम कथा में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। ऐसा सभी महापुरुषों के साथ हुआ है।

दूसरा तरीका है कि जीवन चरित्र व आदर्शों को पुस्तक रूप में लिखकर सुरक्षित रखा जाये। कागज कितना भी अच्छा हो, एक आयु के बाद वह नष्ट हो जाता है। अतः पुस्तकों का भी निरन्तर लेखन व प्रकाशन करना पड़ता है जिससे समय के साथ-साथ कुछ प्रक्षिप्त अंश भी उनमें जुड़ते रहते हैं। यही कारण है कि विभिन्न लेखकों द्वारा लिखी राम कथाओं में भी पर्याप्त अन्तर पाये जाते हैं। पैगम्बर मौहम्मद साहब ने 'कुरान' में एक भी शब्द घटाने या बढ़ाने पर पाबन्दी इसीलिए लगाई थी।

तीसरा तरीका है कि उस व्यक्ति की मूर्ति, समाधि या मजार बना दी जाए व उसकी पूजा अर्चना आरम्भ कर दी जाये।

पत्थरों की मूर्तियाँ हजारों वर्षों तक नष्ट नहीं होती। मूर्तिपूजा का विरोध करने वाले यह भूल जाते हैं कि किसी व्यक्ति की स्मृति को स्थायी बनाये रखने का मूर्तिपूजा ही सर्वोत्तम उपाय है। मूर्तिपूजा में धार्मिक

भावनाएँ जुड़ने से उन महापुरुषों के प्रति आदर व श्रद्धा की भावना बढ़ती है जो उचित व आवश्यक है।

ईसाई लोग ईसा मसीह की मूर्ति की पूजा करते हैं। बुद्ध, महावीर आदि की मूर्तियाँ भी वास्तव में इन महापुरुषों की स्मृतियों को स्थायी बनाये रखने का उत्तम तरीका है।

आधुनिक युग में महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरु, अम्बेडकर, मार्क्स, लेनिन, महाराणा प्रताप, शिवाजी, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद व अन्य महापुरुषों की मूर्तियाँ जगह-जगह बनाई गई हैं। ये उनके चेहरे, कद काठी, पोशाक आदि की हमें याद कराती रहती हैं। इसके अलावा प्रति वर्ष चित्रों, कलैंडरों आदि के द्वारा भी महापुरुषों को याद किया जाता है।

इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक रूप से मानव उत्सव प्रिय है। पूरे संसार में मानव जीवन को सरस, उल्लासपूर्ण और खुशियों से भरा बनाये रखने के लिए मनुष्यों ने अपने मनोरंजन के साधनों, बहानों व अवसरों की तलाश की है। उसी के लिये प्राचीन काल से ही महापुरुषों ने मूर्ति पूजा के रूप में अनेक अलौकिक शक्तियों की उपासना की पद्धति आरम्भ की। उन्हीं से सम्बन्धित अनेक उत्सवों का प्रचार-प्रसार किया है। सामान्य बुद्धि के व अनपढ़ व्यक्तियों के लिए भक्ति मार्ग ही सर्वोत्तम बताया गया। प्राचीन काल में पढ़ाई-लिखाई के साधन न के बराबर ही थे। अतः मूर्तिपूजा ही ईश्वरोपासना का सबसे सरल तरीका लोगों को लगा। मूर्तिपूजा के समानान्तर पीपल, तुलसी, वट, गंगा, गोदावरी, हिमालय आदि की पूजा हमें प्रकृति से भी जोड़ती है। भारत में इसका जो रूप प्रचलित है उससे व्यक्ति में ईश्वर का डर व अहिंसा का भाव अवश्य ही जागृत होता है। दूसरों के प्रति अत्याचार न करने की भावना भी बलवती होती है। मूर्तिपूजा की तार्किक व्याख्या भी एक वैज्ञानिक रूप से की जा सकती है जैसे —

क्या हम कोई ऐसा स्थान या पदार्थ सिद्ध कर सकते हैं कि जहाँ ईश्वर नहीं है? नहीं न। क्या हम प्रमाणों, प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर सकते हैं कि अमुक जगह या अमुक पदार्थ में ईश्वर मौजूद है? नहीं न। फिर किसी स्थान मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा आदि में हम न तो ईश्वर की मौजूदगी को सिद्ध कर सकते हैं और न ही अनुपस्थिति सिद्ध कर सकते हैं। तो फिर

हम यह कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि मूर्ति में भगवान् नहीं है। जब हम ईश्वर की उपस्थिति या अनुपस्थिति कहीं भी सिद्ध नहीं कर सकते तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि मूर्ति में भगवान नहीं है अथवा मूर्तिपूजक तो असत्य रास्ते पर हैं, मूर्ति न पूजने वाले सही रास्ते पर हैं। यह तो मात्र ईश्वर के प्रति अपनी आस्था प्रकट करने का एक तरीका मात्र है जिसकी आलोचना उचित नहीं है।

वैसे एक बात देखें कि संसार में तीन मुख्य धर्म या दर्शन निराकार ईश्वर की पूजा करते हैं।

वैदिक आर्य, ईसाई व इस्लाम के अनुयायी। इनमें से वैदिक आर्यों का इतिहास भी दस्युओं, अनार्यों, दानवों, राक्षसों, दैत्यों आदि के विरुद्ध युद्धों से भरा पड़ा है।

ईसाइयों ने दुनिया के देशों को जीतकर वहाँ की धन सम्पदा तो लूटी ही भूमि पर भी कब्जा किया। अफ्रीका से जबरदस्ती जो मजदूर पकड़कर लाते थे, उनके साथ पशुओं जैसा क्रूर व्यवहार किया जाता था। इसके अलावा तमाम देशों की स्थानीय संस्कृति को मिटाकर उन्हें ईसाई बनाया। उदाहरण के लिए पूरे आस्ट्रेलिया पर कब्जा करके वहाँ के मूल निवासियों की हत्याएँ करके समाप्त कर दिया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी मूल निवासी 'रेड इंडियन' अब नाम-मात्र को बचे हैं। जहाँ तक धर्म का प्रश्न है पूरे यूरोप, अमेरिका व अफ्रीका महाद्वीप का ईसाईकरण कर दिया गया है। अब एशिया पर दृष्टि है।

तीसरा दर्शन इस्लाम है। दुनिया में इस्लाम धर्म का उदय होते ही सऊदी अरब से सेनाएँ आसपास के क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने व वहाँ के निवासियों को बलात मुसलमान बनाने के लिए निकल पड़ी और चारों ओर मारकाट, लूटपाट, औरतों को जबरदस्ती पकड़कर उनसे इस्लाम कबूलवा कर अपने घरों में रखना आदि कार्यों में लग गई। पहले इराक, ईरान, मिस्र फिर अफगानिस्तान आदि क्षेत्रें में कब्जा करके उसका पूर्ण इस्लामीकरण कर दिया गया। उसके बाद भारत पर इस्लामी शक्तियों के आक्रमण आरम्भ हुए और आज के भारत खंड की पाकिस्तान, भारत व बांग्लादेश की जनसंख्या का स्वरूप देखें तो लगभग 50 प्रतिशत लोगों का

इस्लामीकरण हो चुका है। पूरे विश्व में आतंकवादी संगठनों में से मुस्लिम देशों में जितने भी संगठन काम कर रहे हैं, उनका घोषित लक्ष्य पूरे विश्व का इस्लामीकरण करना है। विश्व में सबसे अधिक खूनखराबा आतंक ये ही फैला रहे हैं।

धर्म को लेकर खूनी संघर्ष मुसलमानों व ईसाइयों के बीच इस्लाम के उदय से ही चला आ रहा है।

संसार में असंख्य युद्धों में सबसे बड़े दो विश्व युद्ध 1914 से 1918 तक तथा 1939 से 1945 तक यूरोप के ईसाइयों ने ही लड़े जो कि निराकार ईश्वर के मानने वाले हैं व मूर्तिपूजक नहीं हैं।

उपरोक्त विवेचना का मेरा उद्देश्य केवल यह है कि कुल मिलाकर निराकार ईश्वर को मानने वालों ने मूर्तिपूजकों से हजारों गुना अधिक मारकाट, लूटमार और अत्याचार किये हैं। मूर्तिपूजकों का इतिहास अपेक्षाकृत अहिंसात्मक रहा है। बलात धर्म परिवर्तन भी मूर्ति पूजकों ने नहीं कराये। मनुष्य तो क्या दूसरे जीवों को दुःख पहुँचाने पर पाप की भावना जितनी मूर्तिपूजकों में पाई जाती है उतनी निराकारवादियों में कहीं नहीं पाई जाती है।

अतः यह सोचना कि निराकार ईश्वर के उपासक मूर्तिपूजकों से अच्छे इंसान होते हैं, मात्र भ्रम है। अच्छे इंसान तो निराकार ईश्वर को मानने वालों में भी हो सकते हैं और मूर्ति पूजकों में भी। इसी प्रकार बुरे इंसान तो निराकार ईश्वर मानने वालों में भी हो सकते हैं व मूर्तिपूजकों में भी। बात को और स्पष्ट करने के लिए मेरा विचार है कि दोनों वक्त पूजा करने वाला कोई मूर्ति पूजक या पाँचों वक्त नमाज पढ़ने वाला व्यक्ति अच्छा आदमी भी हो सकता है या नरपिशाच भी।

व्यक्ति का अच्छा या बुरा होना उसके मूर्ति पूजक होने या निराकारवादी होने से सिद्ध नहीं होता बल्कि वह तो मानवीय गुण जैसे सत्य, अहिंसा, करुणा, परोपकार, कर्त्तव्यपालन आदि के गुणों के होने या ना होने से सिद्ध होता है।

एक बात और, निराकारवादी आर्य समाजी, मुसलमान व ईसाई लगातार मूर्तिपूजकों को मूर्ख, अज्ञानी बताते रहते हैं व उन्हें यह भ्रम रहता है कि उनका ज्ञान व उनका रास्ता मूर्ति पूजकों से श्रेष्ठ है। इस्लाम के अनुयाइयों

ने दुनिया में मूर्ति पूजकों के मन्दिर व अन्य पूजा स्थल तोड़कर मस्जिदें बनाईं व लोगों को तलवार के बल पर इस्लाम कबूल करवाया किन्तु पूरे इतिहास में यह कहीं नहीं पढ़ा कि मूर्तिपूजकों ने मुसलमानों की मस्जिदें तोड़ी या ईसाइयों के गिरजाघर तोड़े हों या बलात् छल कपट से लोगों को अपने धर्म में शामिल किया हो। पूरे भारत में कोई ऐसा उदाहरण नहीं है जो मूर्तिपूजक वेदों, गुरु ग्रंथ साहब या ईसाइयों के धर्म ग्रंथ बाईबिल या कुरान शरीफ की निन्दा करता हो जबकि निराकारवादी मूर्ति पूजकों की सदैव निन्दा करते रहते हैं।

एक और दृष्टिकोण से देखें कि निराकारवादी कहते हैं कि मूर्ति तो जड़ पदार्थ है उसमें परमात्मा कैसे हो सकता है? जिन पदार्थों को हम लोग जड़ (चेतना शून्य) समझते हैं उनमें भी भौतिक नियमों के पालन की प्रवृत्ति पाई जाती है। जैसे एक इलेक्ट्रॉन निरन्तर एटम की नाभि से निश्चित दूरी पर गतिमान रहता है और एटम के साथ जुड़कर पदार्थ बनाता है। बल भी अचेतन शक्ति है। ये सारे जड़ पदार्थ भी ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं। उसकी भाषा को समझने में समर्थ हैं तो हो सकता है कि उनमें भी किसी प्रकार की चेतना हो।

एक तर्क और कि एक ओर तो सारे निराकारवादी ईश्वर को सर्वशक्तिमान व सर्वव्यापक कहते हैं दूसरे मूर्ति में उसकी उपस्थिति से इंकार करते हैं। मान ले ईश्वर किसी की मदद मूर्ति के माध्यम से ही करना चाहता है तो क्या ऐसा करने में असमर्थ होगा। यदि असमर्थ होगा तो सर्वशक्तिमान कैसे हुआ? मूर्ति में नहीं है तो वह सर्वव्यापक कैसे हुआ?

कुल मिलाकर देखें तो ईश्वर के बारे में सब धर्म प्रचारकों ने अपने-अपने विचार ही दिये हैं। ईश्वर का पूर्ण ज्ञान तो शायद किसी को भी नहीं था। क्योंकि यदि उन्हें पूर्ण ज्ञान होता तो वैदिक ऋषि-मुनि, श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह, मौहम्मद साहब हमें अलग-अलग रास्ते न बताते। जो लोग इस भ्रम में हैं कि सभी धर्मों की मूल बातें एक सी हैं, वे झूठ बोलते हैं। जैसे इस्लाम, ईसाई, सिख माँस भक्षण में कोई बुराई नहीं मानते जबकि जैन, बौद्ध व सनातन धर्म वाले माँस भक्षण को पाप मानते हैं।

वैदिक व सनातन धर्म वाले पुनर्जन्म को मानते हैं जबकि इस्लाम के

अनुयाई व ईसाई नहीं मानते। वैदिक व सनातन धर्म वालों के लिए गाय पूजनीय है किन्तु मुसलमान व ईसाई गाय का माँस खाने में भी कोई बुराई नहीं मानते। मुसलमान सुअर नहीं खाते अन्य लोग खाते हैं। ऐसी बहुत सी बातें हैं। सनातनधर्म में कर्मों का फल जन्म-जन्मान्तर में मिलने की मान्यता है, जबकि इस्लाम केवल कयामत के दिन की बात कहता है।

सभी धर्म अपनी-अपनी पूजा पद्धति अलग-अलग बताते हैं किन्तु किसी भी प्रकार की पूजा-अर्चना से भगवान् को कोई लाभ होता हो या वह प्रसन्न होता ही हो, कोई नहीं जानता। सभी मनुष्यों को यह विश्वास दिलाया जाता है कि अपनी पूजा से ईश्वर खुश होता है। इस विश्वास के कारण मनुष्य को पर्याप्त मात्र में मनोवैज्ञानिक लाभ तो होता है किन्तु मानवों के विभिन्न समुदायों में भेदभाव व नफरत भी खूब पनपती है।

ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताने वाले बड़े से बड़े उपदेशक से चाहे वह निराकारवादी हो या मूर्ति पूजक यदि यह पूछा जाये कि क्या आपको ईश्वर मिल गया तो उसका उत्तर 'न' ही होगा।

अतः मूर्ति पूजा या मूर्ति पूजकों की निन्दा करने से अच्छा है कि किसी भी धर्म के उन रीति-रिवाजों की निन्दा की जाये जिनसे मानव समाज में विघटन पैदा होता हो या एक समुदाय के ऐसे नियम जिनसे दूसरों को हानि पहुँचती हो या मानव अधिकारों का उल्लंघन होता हो।



ब्रह्मा–विष्णु–महेश

मुझे कई बार ऐसा लगता है कि प्राचीन भारतीय ऋषि, मुनि अपने काल के वैज्ञानिक ही रहे होंगे और उन्हें यह आभास रहा होगा कि यदि उनके समय की सभ्यता नष्ट हो गई तो उनके द्वारा प्राप्त किया गया सैद्धांतिक ज्ञान भी नष्ट हो जाएगा। शायद इसी कारण उन्होंने बहुत से वैज्ञानिक ज्ञान को धार्मिक प्रतीकों का रूप दे दिया ताकि बाद में वैज्ञानिक सोच रखने वाले लोग इनका अर्थ समझ सके। उदाहरण के लिए उपवास, सूर्य नमस्कार, योग आदि से पुण्य मिले या ना मिले स्वास्थ्य लाभ अवश्य ही होता है, जो वास्तविक उद्देश्य है।

इस पृथ्वी पर या ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं भी जीवन है उसकी निरन्तरता बनाये रखने के लिए तीन बातें अनिवार्य हैं वे हैं – जन्म, जीवन व मृत्यु। यदि नये जीवों का जन्म लगातार होता चला जाये किन्तु मृत्यु न हो तो थोड़े समय बाद ही पृथ्वी पर तिल रखने को भी जगह न रह जाएगी और जीवन की गतिविधियाँ चलाये रखना असम्भव हो जायेगा। इसलिए ईश्वर ने जन्म के साथ ही मृत्यु का नियम भी बनाया ताकि पृथ्वी पर जीवों, वनस्पति की संख्या व मात्र को सन्तुलित रखा जा सके। इसीलिए हम देखते हैं कि सभी जीव अपना-अपना जीवन जीकर अन्त में बूढ़े होकर अथवा दूसरे जीवों का शिकार होकर मर जाते हैं। इस प्रकार जीवों की संख्या सन्तुलित रहती है।

आजकल विश्व में जनसंख्या बढ़ने से रोकने के अनेक उपाय किये जा रहे हैं। चिकित्सा क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति होने के कारण मृत्यु दर घट गई है। इससे संसार में रोजगार, रोटी, कपड़ा, मकान की विकराल समस्या उत्पन्न हो गई है। अतः यह सिद्ध है कि जीवन के अस्तित्व के लिए जन्म व मृत्यु दोनों अनिवार्य

हैं। अब आगे कल्पना कीजिए कि इधर जीव पैदा हो रहे हैं और उधर मर रहे हैं तो कैसी भयावह स्थिति होगी। जीवों का होना न होना बराबर हो जायेगा। अतः ईश्वर ने जीवों को ऐसी शक्तियाँ व क्षमताएँ दी कि प्रत्येक जीव मृत्यु को परे धकेलता रहता है। पूरा जीवन जीने के बाद ही वह मृत्यु के आगे विवश होता है। जीवों की मृत्यु मुख्यतः तीन प्रकार से होती है। बीमारी के कारण या अन्य जीवों द्वारा अपना भोजन बना लिये जाने के कारण अथवा बुढ़ापे के कारण।

ईश्वर ने सभी जीवों को बीमारियों से मुकाबला करने की शक्ति दी है। किन्तु यह शक्ति एक सीमा में ही है, असीमित नहीं। इसी प्रकार दूसरे जीवों का शिकार बनने से बचने की भी कुछ क्षमताएँ दी हैं। जैसे हिरन में दौड़ने की, कीटों में रंग बदलने की शक्ति व बहुत अधिक प्रजनन दर आदि। माँस भक्षी जीवों की प्रजनन दर अपेक्षाकृत कम होती है। बुढ़ापा भी जीवों को एक निश्चित आयु के बाद ही आता है पहले नहीं। अर्थात् प्रत्येक जीव जाति का एक निश्चित जीवन चक्र होता है।

इस प्रकार ब्रह्माण्ड में जीवन तीन नियमों अथवा तीन शक्तियों द्वारा संचालित होता है। एक – लगातार जन्म होते रहना। दो – लगातार मृत्यु होते रहना। तीसरा – पालन-पोषण व जीवन की रक्षा होते रहना। इस तीसरी व्यवस्था के कारण जन्म व मृत्यु के बीच उचित अन्तराल अर्थात् जीवन अवधि बनी रहती है। सृष्टि के इन तीन नियमों या कार्यकारी शक्तियों के प्रतीक नाम ही मेरे विचार से भारतीय संस्कृति में ब्रह्मा, विष्णु व महेश रख दिये गये हैं। युगों-युगों से ज्ञान के पीढ़ी दर पीढ़ी चले आते रहने का एक बड़ा तरीका यह भी रहा है कि कौतुहल पूर्ण रहस्य, रोमांच से भरी कहानियों के रूप में प्रचलित रखा जाए। विशेषकर बाल-मन उन्हीं बातों को याद रखता है जिनमें अलौकिकता भरी हो। एक अन्य दृष्टिकोण से देखे तो परमाणु की रचना भी तीन मूल कणों इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन व न्यूट्रॉन से ही सम्भव है। अन्य कण भी अब खोज लिये गये हैं। वे ऐसे ही हैं जैसे अनेक देवों की कल्पना हो। कहीं ये तीन कण ही तो त्रिदेव नहीं हैं !

यहाँ मेरा उद्देश्य केवल इस ओर ध्यान दिलाना है कि जन्म के देवता ब्रह्मा, पालनकर्त्ता विष्णु व संहार के देव शंकर वास्तव में एक ही ईश्वर की शक्तियों के प्रतीक हैं।



छिति, जल, पावक, गगन, समीरा

मुझे ऐसा लगता है कि भारत में बहुत से वैज्ञानिक ज्ञान को कथा, कहानियों व धार्मिक उपदेशों के रूप में प्रचलित किया गया है। इसी कारण वह ज्ञान अभी तक संचित है। जनसामान्य को कठिन विषयों को सीधे-सीधे समझाना कठिन होता है।

मेरा ध्यान हिन्दू धर्म के इस सिद्धांत की ओर गया कि मानव (जीव जगत) का शरीर पाँच तत्त्वों — पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश से बना है व इन्हीं में विलीन हो जाता है। इसका क्या अर्थ हो सकता है?

तत्त्व की वर्तमान परिभाषा के अनुसार तो पृथ्वी, जल व वायु तो तत्त्व ही नहीं है। पृथ्वी व वायु तो विभिन्न तत्त्वों व यौगिकों का मिश्रण व जल एक यौगिक है। अग्नि 'ऊर्जा' है और आकाश खाली जगह को कहते हैं।

तो क्या यह सिद्धांत असत्य है? विज्ञान की पुस्तकें पढ़ने के बाद निम्नलिखित विश्लेषण मेरी समझ में आया

प्रत्येक जीव का शरीर पदार्थ के तीन रूपों-ठोस, द्रव और गैस का बना होता है। मोटे तौर पर हड्डियाँ ठोस, रक्त द्रव व फेफड़ों व पाचन प्रणाली में मौजूद वायु गैस के रूप में होती है। इस प्रकार यदि हम पृथ्वी को ठोस का, जल को द्रव का व वायु को गैस का प्रतीक मान लें तो बात समझ में आती है कि सिद्धांतकार यह कहना चाहता है कि जीवों का शरीर ठोस, द्रव व गैस का बना होता है।

अब हम अग्नि तत्त्व पर विचार करते हैं। आधुनिक परिभाषा में अग्नि ऊर्जा का रूप है। ऊर्जा के पाँच रूप होते हैं — प्रकाश, ताप, विद्युत, ध्वनि

व चुम्बकत्व। इनमें ताप अग्नि का प्रतीक है।

किसी भी रासायनिक या जैविक क्रिया के लिए ताप की अनिवार्य रूप में आवश्यकता होती है। इसी प्रकार जीवों की उत्पत्ति, संवर्धन, विनाश, प्रकाश-संश्लेषण व अन्य रासायनिक क्रियाओं के लिए कोई न कोई तापक्रम जरूरी होता है। पृथ्वी पर सभी जीवों का अस्तित्व 'प्रकाश संश्लेषण' क्रिया पर निर्भर है। क्योंकि इससे उत्पन्न वनस्पति खाकर ही जीवों का पेट भरता है। मांसाहारी जीव वनस्पति को सीधे नहीं खाते बल्कि उन जीवों को खाते हैं जो खुद वनस्पति खाकर जीवित रहते हैं। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि अग्नि जीवन के अस्तित्त्व के लिए एक आवश्यक 'कारक' है।

अब हम पाँचवें तत्त्व 'आकाश' पर आते हैं। 'आकाश' कोई तत्त्व, यौगिक या ऊर्जा नहीं है बल्कि खाली स्थान को कहते हैं। इसे शून्य, अंतरिक्ष व ब्रह्माण्ड भी कहा गया है।

हम जानते हैं कि प्रत्येक पदार्थ छोटे-छोटे परमाणुओं, अणुओं से बना है। ये अणु व परमाणु आपस में सटे हुए नहीं होते। इनके बीच काफी खाली जगह होती है। इसे 'अन्तराणुक स्थान' कहते हैं। यह खाली जगह ठोस में कम, द्रव में उससे अधिक व गैस में सबसे अधिक होती है। यदि इस खाली स्थान को समाप्त कर दिया जाए तो पूरी पृथ्वी एक बड़ी फुटबाल के बराबर आकार की रह जाएगी। इस कुछ मीटर व्यास की पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं होगा।

अब हम और आगे चलते हैं। प्रत्येक परमाणु के केन्द्र में एक नाभिक होता है। उसमें न्यूट्रॉन व प्रोटॉन कण रहते हैं। परमाणु का सारा भार व द्रव्यमान इन्हीं के कारण होता है। इलेक्ट्रॉन नाभिक के बाहर अलग-अलग दूरी के वृत में चक्कर काटते रहते हैं। परमाणु की तुलना सौर मंडल से की जाती है। सौर मंडल के अन्तिम ग्रह तक सौरमंडल का क्षेत्रफल माना जाता है। इसी प्रकार परमाणु के सबसे बाहरी कक्षा के इलेक्ट्रॉन तक एक परमाणु का क्षेत्रफल माना जाता है।

इस प्रकार प्रत्येक परमाणु के नाभिक व अन्तिम इलेक्ट्रॉन की कक्षा के बीच सारा स्थान खाली अर्थात् 'आकाश' ही होता है। परमाणु के अन्दर यदि यह खाली स्थान न हो तो परमाणु का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है तथा

परमाणुओं व अणुओं के बीच यदि 'अन्तराणुविक स्थान' न हो तो जीवन सम्भव नहीं है। इस खाली स्थान अर्थात् 'आकाश' के बिना ब्रह्माण्ड का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। अतः यह एक वैज्ञानिक सच्चाई है कि-

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच भूत रचि अधम शरीरा।।

यह सिद्धांत यह भी ज्ञान कराता है कि सारा जीव जगत केवल भौतिक पदार्थों का संयोजन मात्र नहीं है बल्कि ब्रह्माण्ड के अस्तित्व के लिए ऊर्जा व आकाश जैसे अभौतिक कारक भी आवश्यक हैं।

हम यह सोचने को मजबूर हैं कि जिसने इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन जैसे जड़ कणों को भी नियमों का पालन सिखाया व इन्हें नियमों के पालन करने को बाध्य किया है, वही शायद ईश्वर, खुदा या गॉड है।



सृष्टि संवत

भारत देश में प्राचीन काल से अनेक संवतों का प्रचलन है। जैसे सृष्टि संवत, युगाब्द संवत, विक्रमी संवत, शक संवत आदि।

इनमें युगाब्द संवत या युधिष्ठर संवत तो महाभारत की घटना या कलियुग के आरंभ की तिथि से माना जाता है। अन्य बाद के संवत अलग-अलग प्रसिद्ध सम्राटों के नाम पर उनके समय से आरंभ माने जाते है। जैसे विक्रमी संवत सम्राट चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य के नाम पर आरंभ किया गया है। सभी संवतों की काल गणना पद्धति उच्च कोटि की खोज, परीक्षण आदि का परिणाम है। बड़े आश्चर्य का विषय है कि उन दिनों आधुनिक यन्त्रों के अभाव में ऋषि-मुनियों या कहें कि उस काल के वैज्ञानिको ने रात-दिन नंगी आँखों से कितनी पीढ़ियों तक सूर्य, चन्द्र, तारों की स्थितियों-गतियों का अध्ययन किया होगा व ऐसे पंचांग बनाये जिनमें वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, दिन का पता चलता है। यह विशेषता विश्व के अन्य किसी भी देश के कैलेंडरों में आज भी नहीं पायी जाती, जो इस बात का पक्का प्रमाण है कि अति प्राचीन काल में भारत में एक बहुत उच्च कोटि की सभ्यता व संस्कृति का विकास अवश्य ही हुआ था। संस्कृत जैसी भाषा का विकास करना भी उस प्राचीन समय में अपने आप में अद्भुत है।

यहाँ पर जब मैंने सृष्टि संवत पर ध्यान दिया तो यह समझ नहीं आया कि आखिर करीब दो अरब वर्ष पुराने संवत का क्या अर्थ व कारण हो सकता है? मैं संस्कृत या ज्योतिष का विद्वान नहीं हूँ, विज्ञान भी मात्र इंटर तक ही पढ़ा है। अतः कोई आधिकारिक कारण तो मुझे नहीं पता किन्तु

मेरी सामान्य बुद्धि में जो आया, वह लिख रहा हूँ।

आज की वैज्ञानिक जानकारी के अनुसार पृथ्वी की आयु करीब पाँच अरब वर्ष है। धीरे-धीरे ठण्डी होकर इस पर ठोस तल व बड़े-बड़े महासागर बने। पृथ्वी के वर्तमान स्वरूप में आते-आते करीब तीन अरब वर्ष तक महासागरों के आकार व स्थिति बदलती रही है। आज भी बदल रही है।

वैज्ञानिक खोजों के आधार पर पृथ्वी पर जीवन पहले महासागरों मे एककोशीय जीव 'अमीबा' से आरंभ हुआ। बड़े जीव या वनस्पति के विकास होने में फिर अरबों वर्ष लगे। आज भी पृथ्वी पर अनेक जीवों की व वनस्पतियों की प्रजातियों का विलुप्त हो जाना व नये जीवों व वनस्पतियों विकास होना जारी है।

आज जीव वैज्ञानिक खोजों के आधार पर एक मोटा अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वी पर अमीबा जैसे एक कोशीय जीव का जन्म या उद्‌भव करीब दो अरब वर्ष पूर्व हुआ था। अब भी जीवों का व वनस्पति का विकास-क्रम जारी है।

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सृष्टि संवत भी आज की तारीख में 1971221116वें वर्ष में चल रहा है; शब्दों में 'एक अरब सत्तानवे करोड़ बारह लाख इक्कीस हजार एक सौ सोलह।' इस संवत का नाम भी किसी राजा या किसी महापुरुष या किसी युद्धादि या युग परिवर्तन से संबधित न होकर 'सृष्टि संवत' है। नाम से बिल्कुल स्पष्ट है कि यह संसार में जीवों की उत्पत्ति के आरंभ का समय दर्शाता है। यही समय आज के वैज्ञानिक भी दर्शा रहे हैं। मुझे तो यही लगता है कि हमारे ऋषियों ने भी सृष्टि के आरंभ की सही-सही कालगणना कर ली थी, जो आज भी सत्य सिद्ध हो रही है। एक और साम्य देखिये कि जीवों का विकास निम्नलिखित क्रम में हुआ है

1. जल में महासागरों में एककोशीय जीवों से बढ़कर व्हेल जैसे बड़े जीव बने। चूंकि – जल में इससे ज्यादा संख्या मछली की है तो उन्हे प्रतीक-रूप में 'मत्स्य वर्ग' कहें।
2. फिर ऐसे 'उभयचर' जीवों का विकास हुआ जो जल व थल दोनों पर जीवित रह सकते थे जैसे कछुआ, साँप, मेढ़क आदि।

3. फिर ऐसे जीवों का विकास हुआ जो पूरी तरह स्थलीय थे जैसे हाथी, शेर, डायानासोर व अन्य सभी। चूँकि ये सब जीव चार या अधिक पैरों पर चलते थे। इनका प्रतीक कोई एक जीव माने जैसे सूकर।
4. फिर ऐसा समय आया, जब किसी चौपाये ने दो पैरों पर चलना सीखा। तब उन जीवों का स्वरूप मानव व पशु का मिला-जुला रूप रहा होगा। इनको प्रतीक रूप में नृसिंह कहें।
5. मैने जीव विज्ञान में पढ़ा है कि आरंभ में घोड़े, कुत्ते के आकार के थे। बाद के विकास क्रम में वर्तमान स्वरूप में विकसित हुए हैं। हो सकता है कि मानवों में कभी, कहीं किसी 'बौनी' प्रजाति का भी अस्तित्व रहा हो। मुझे लगता है कि बहुत सी पौराणिक कथाओं में कुछ ज्ञान की बात छिपी हुई हैं। किन्तु उन्हें रहस्य, रोमांच, अलौकिकता में लपेटकर कहा गया है। यह भी आश्चर्य है कि यदि वे ऐसा न करते तो हम इन कथाओं को भूल चुके होते। हमारे अवतारों का क्रम भी 1. मत्स्यावतार, 2. कच्छप, 3. वराह, 4. नृसिंह, 5. वामन आदि है।



त्रिशंकु

मैंने बचपन में अपने बुजुर्गों से एक कथा सुनी कि शुकदेव जी ने भागवत कथा सुनाते हुए कहा कि वीर भीमसेन ने महाभारत युद्ध में कुछ हाथियों को उठाकर इतने जोर से आसमान की ओर फेंका कि वे फिर कभी लौटकर पृथ्वी पर नहीं गिरे व आज भी आसमान में घूम रहे हैं।

दूसरी कथा अपनी छठी कक्षा की पाठ्य पुस्तक में पढ़ी व अन्य कई किताबों आदि में भी पढ़ी। इस कथा का आदि स्रोत वाल्मीकि रामायण, उपनिषद्, पुराण या महाभारत हो सकता है। कथा यह है कि एक राजा त्रिशंकु ने महर्षि विश्वामित्र से सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा प्रकट की। तब विश्वामित्र जी ने अपने तपोबल से राजा त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग में भेजने का आश्वासन दिया। महर्षि विश्वामित्र के प्रयत्नों से राजा त्रिशंकु स्वर्ग की ओर आकाश में उठने लगे। यह देख स्वर्ग के राजा इन्द्र को महर्षि का यह कार्य अनुचित लगा। ऐसे तो सृष्टि के नियम ही बदल जायगे। इन्द्र ने अपनी शक्ति से राजा त्रिशंकु को ऊपर बढ़ने से रोक दिया। किन्तु ऋषि विश्वामित्र ने अपनी शक्ति से उनका नीचे आना रोक दिया। परिणामतः राजा त्रिशंकु स्वर्ग व पृथ्वी के बीच आकाश में ही चक्कर काटते रह गये।

त्रिशंकु अधर में लटके रहने का मुहावरा ही बन गया। हिन्दी साहित्य में 'त्रिशंकु' का कभी प्रतीक तो कभी उपमा के रूप में उल्लेख मिलता है। प्रयोगवादी कवि सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए अपने निबन्ध ग्रंथ का नाम ही 'त्रिशंकु' रख दिया है।

मुझे ऐसा लगता है कि कहीं किसी प्राचीन ऋषि (वैज्ञानिक) ने इन कथाओं के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न तो नहीं किया कि पृथ्वी व चाँद

के बीच एक ऐसा बिन्दु भी है जहाँ पर दोनो की आकर्षण शक्ति एक दूसरे का प्रभाव समाप्त कर देती है। उस बिन्दु पर जाकर कोई वस्तु न ऊपर जायगी न नीचे गिरेगी। आज के उपग्रह (सैटेलाइट) इसी सिद्धांत पर व गति के सिद्धांत पर आकाश में पृथ्वी की परिक्रमा करते रहते हैं।



दान महिमा

प्राचीन काल में शिक्षा का एक ही तरीका प्रचलित था कि सभी वर्गों के बच्चे गुरुकुल या ऋषियों के आश्रम में पढ़ने जाते थे। वहाँ शिक्षकों को कोई वेतन नहीं मिलता था। इसके अतिरिक्त जो लोग विभिन्न प्रकार के शोध कार्यों में लगे रहते थे, उन्हें भी अपने भरण-पोषण की चिन्ता से मुक्त रखना आवश्यक था।

अतः इन वर्गों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए समाज में भिक्षावृत्ति, गुरु दक्षिणा व दान देने की प्रथा आरम्भ की गई होगी। उसे सम्मानित कार्य माना गया। विद्यार्थियों को भिक्षा देना गृहस्थों का पुनीत कर्त्तव्य माना गया। इससे समाज में छुआछूत व छोटे-बड़े की भावना भी समाप्त होती थी। क्योंकि भिक्षार्थी की कोई वर्ण या जाति नहीं पूछी जाती। वह हर द्वार से भिक्षा लेता था।

इसी प्रकार दान तथा उस दक्षिणा से प्राप्त धन से ही आश्रम का खर्च चलता था। इसी कारण भिक्षा व दान देना हर गृहस्थ का पवित्र कर्त्तव्य माना गया। भिक्षा लेने वालों तथा दान लेने वालों को भी समाज में सम्मानित व्यक्ति माना जाता था। क्योंकि या तो वे उन्हीं गृहस्थों के बच्चे होते थे या किसी खोज कार्यों या समाज के लिए लाभकारी कार्यों में लगे होते थे। राजा अपने राज कार्यों के संचालन के लिए 'कर' लेता था जिसको वसूलने के लिए राज कर्मचारी होते थे। किन्तु भिक्षा, गुरु दक्षिणा व दान ईश्वर, धर्म, पुण्य के नाम पर दाता की स्वेच्छा के अनुसार ही होता था।

कोई कितनी भी अच्छी संस्था या परम्परा हो, समय के साथ-साथ

उसमें विकृतियाँ आ ही जाती हैं। ऐसा ही दान देने-लेने की प्रथा के साथ भी हुआ। कुछ स्वार्थी लोगों ने अपने भरण-पोषण, सुख-सुविधा, सम्पन्न जीवन जीने के लिए दान की महिमा को अतिरंजित करके भोली भाली जनता को मूर्ख बनाना आरम्भ कर दिया।

इसके लिए अनेक कपोल कल्पित कथाओं की रचना की गई व दान देने से अगले जन्म में कई गुना बढ़कर मिलने की आशा दिलाई गई। साथ ही अनेक प्रकार के स्वर्गिक सुखों के प्रलोभन दिये गये। यह ऐसा ही था जैसे आजकल विभिन्न व्यापारी अपने माल की बिक्री के लिए तरह-तरह के झूठे-सच्चे विज्ञापन देते रहते हैं। इसका प्रभाव भी खूब हुआ। भोली-भाली, अशिक्षित व शिक्षित जनता में भी दान की प्रथा खूब फली-फूली। आज भी लोग अपनी मेहनत की गाढ़ी कमाई, मठों, मन्दिरों, भिखारियों को दान में दे रहे हैं। किन्तु अति हर बात की बुरी होती है। कुछ उदाहरणार्थ देखें –

राजा मयूरध्वज

राजा मयूरध्वज की कथा दान की महिमा को प्रचारित करने व उसे महिमा मंडित करने के लिए लिखी प्रतीत होती है।

कथा संक्षेप में इस प्रकार है कि अर्जुन को यह अभिमान हो जाता है कि वह भगवान कृष्ण का सबसे बड़ा भक्त है। अर्जुन के अभिमान को तोड़ने के लिए भगवान श्रीकृष्ण उसे राजा मयूरध्वज की कृष्ण भक्ति दिखाने ले जाते हैं। श्रीकृष्ण व अर्जुन राजा मयूरध्वज के यहाँ साधु वेश में पहुँचते हैं व उनके साथ एक शेर भी होता है। वे लोग राजा से भोजन की प्रार्थना करते हैं। राजा सहर्ष उन्हें भोजन कराने को तैयार हो जाते हैं। राजा शेर के लिए गोश्त का प्रबन्ध करने को तैयार हो जाते हैं। किन्तु राजा को बताया जाता है कि शेर केवल मानव गोश्त खाता है व केवल युवराज धीरध्वज का ही गोश्त खाना चाहता है। वह भी तब जब धीरध्वज की हत्या खुद उसके माता-पिता करें। इस कार्य को करते समय रोये भी नहीं। गहरे पसोपेश व विचार-विमर्श के बाद आखिर राजा, रानी व युवराज तैयार हो जाते हैं व आरे से धीरध्वज को चीर दिया जाता है। अर्जुन का अभिमान दूर हो जाता है व साधु बने श्रीकृष्ण अर्जुन अपने असली वेश में आकर

धीरध्वज को जीवित कर देते हैं।

यदि यह घटना आज होती तो पहले तो राजा-रानी को धीरध्वज की हत्या के लिए आजीवन कारावास या मृत्यु दण्ड दिया जायेगा। फिर दोनों साधुओं को मानव हत्या के लिए प्रेरित करने व अंधविश्वास फैलाने के लिए भी कठोर दण्ड दिया जायेगा। अनेक बार दोबारा जीवित हो जाने के अंधविश्वास के चक्कर में बहुत से मनुष्यों के मारे जाने की कहानियाँ मैंने सुनी थी। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में भी ज्ञान शंकर का बेटा इसी अंधविश्वास में मारा जाता दिखाया गया है।

क्या भगवान के लिए इस प्रकार की हरकत करना सम्भव था। क्या एक पशु के लिए नर बलि का आदर्श भगवान श्रीकृष्ण समाज के सामने रखना चाहते होंगे, कदापि नहीं। कुछ स्वार्थी लोगों ने दान को महिमामंडित करने के अति उत्साह में भगवान श्रीकृष्ण को भी बदनाम ही किया है।

मयूर ध्वज की कथा तथा इसी प्रकार राजा हरिश्चन्द्र की कथा भी यह प्रमाणित करती है कि धर्म के नाम पर कितनी पाखण्डपूर्ण व अनुचित बातों को भी जनता आँख मूँदकर स्वीकार कर लेती है। आज की भाषा में इसे 'ब्रेनवाश' कहा जाएगा।

कर्ण

दान को महिमामंडित करने के लिए कर्ण के विषय में दो कथाएँ प्रचलित हैं। पहली तो उसने अपने कवच कुंडल इन्द्र को दान में दे दिये जो उसकी मृत्यु का कारण बने।

दूसरी कथा में कहा जाता है कि जब कर्ण घायल अवस्था में रणभूमि में पड़ा था तो एक ब्राह्मण उससे दान माँगने जाता है तब कर्ण कहता है कि मेरे पास कुछ नहीं है। तब ब्राह्मण कहता है कि सोने का दाँत तो है। तब कर्ण कहते हैं कि हे ब्राह्मण तुम उसे तोड़ लो। तब ब्राह्मण कहता है कि यह पाप मैं क्यों करूँ? आप खुद ही तोड़कर दो। तब कर्ण खुद एक पत्थर से अपना दाँत तोड़कर ब्राह्मण को दान कर देते हैं। ब्राह्मण खुशी-खुशी अपने घर चला आता है जबकि कर्ण युद्धभूमि में तड़पता-तड़पता प्राण त्याग देता है।

उपरोक्त कथा में एक ब्राह्मण के चरित्र को कितना निन्दनीय तथा निकृष्ट कर दिया है व कर्ण को कितना धर्म भीरू।

हर्ष

हर्ष उत्तर भारत का अन्तिम सम्राट् था। उसकी सेना को चुनौती देने वाली कोई सत्ता उत्तर भारत में तो नहीं थी। दक्षिण भारत में पुलकोसिन द्वितीय उसका समकालीन प्रतापी सम्राट् था। उसी ने हर्ष के दक्षिण विजय अभियान को रोक दिया था।

हर्ष के बारे में कहा जाता है कि वह कुम्भ के मेले में अपना पूरा राजकोष दान कर देता था व अपनी बहन राजश्री से माँगकर नये वस्त्र पहनता था। यह भी दान को अत्यधिक महिमामंडित करने का प्रभाव था। राजकोष पर इसका कितना बुरा प्रभाव पड़ा होगा व सैन्य शक्ति भी कमजोर हो गई होगी।

दान को महिमामंडित करने वाली अनेक काल्पनिक कथाओं के कारण ही आज मन्दिरों में अथाह दान प्राप्त हो रहा है।

